❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बन्धनकर ॥

वर्ष २ | गौराब्द ४७०, मास—त्रिविक्रम २१, वार—कारणोदशायी
बृहस्पतिवार, ३१ ज्येष्ठ, सम्वत् २०१३, १४ जून १९५६ | संख्या १

श्रीगौरांगस्तोत्ररत्नम्

[श्रीगौरदास-ब्रह्मचारि-काव्य-व्याकरणतीर्थेन विरचितम्]

श्रीराधिकारूपगुणोर्म्मिचौरः प्रतप्तकार्त्स्वरकान्तगौरः ।
वेदान्तवेदाङ्ग-पुराणसारः जीयात् स गौरः करुणावतारः ॥१॥
ब्रह्मेन्द्ररुद्रस्तुतपादपद्मः औदार्य-माधुर्यगुणाब्धिसद्मः ।
रोमाञ्च-कम्पाश्रुप्रमोदभारः जीयात् स गौरः करुणावतारः ॥२॥

जिन्होंने श्रीराधिकाके रूप और गुणोंको चुराया है, जिनकी कान्ति तपाए हुए सोनेकी तरह उज्ज्वल है, उन वेद-वेदाङ्ग और पुराणोंके सार करुणाके अवतार श्रीगौरसुन्दरकी जय हो ॥१॥

जिनके चरण-कमलोंकी वन्दना ब्रह्मा, इन्द्र और शिव करते हैं, जो औदार्य और माधुर्यसागरके आश्रय हैं, उन रोमाञ्च, कम्प, अश्रु, और पुलक आदिसे युक्त करुणाके अवतार श्रीगौरसुन्दर-की जय हो ॥२॥

स्वरूप रूपादिक-प्राणनाथः
गोपाल-गोविन्दमुकुन्दनाथः ।
दरिद्रदुर्जात्यवदुःखदारः
जीयात् स गौरः करुणावतारः ॥ ३ ॥

जो स्वरूप, रूप, गोपाल भट्ट, गोविंद और मुकुन्द आदि भक्तोंके प्राणनाथ हैं, उन दरिद्र और नीच जातियोंका दुःख दूर करने वाले करुणाके अवतार श्रीगौरसुन्दर की जय हो ॥ ३ ॥

मायामतध्वान्तनिकारहारी
वाराणसी-न्यासिसमूहतारी ।
विशुद्धसद्भक्तिप्रसारकारी
जीयात् स गौरः करुणावतारी ॥ ४ ॥

जो मायावादरूप अन्धकारको विनाश करनेवाले हैं, जो काशीके संन्यासियोंकी रक्षा करने वाले हैं, उन विशुद्ध और नित्य भक्तिका विस्तार (प्रचार) करने वाले करुणाके अवतार श्रीगौरसुन्दरकी जय हो ॥ ४ ॥

श्रीदिग्विजेतृद्विजदर्पहारी
श्रीसार्वभौमातिप्रसादकारी ।
अष्टादशाब्देशपुरीविहारी
जीयात् स गौरः करुणावतारी ॥ ५ ॥

जो दिग्विजयी केशवकाश्मीरीके दर्पको चूर्ण करने वाले हैं, जो श्रीसार्वभौमभट्टाचार्यके प्रति अतिशय कृपालु है, उन श्रीजगन्नाथपुरीमें अठारह वर्ष विहार करनेवाले करुणाके अवतार श्रीगौरसुन्दरकी जय हो ॥ ५ ॥

महोज्ज्वलप्रेमरस प्रदाता
श्रीनामसर्वोत्तमभक्तिधाता ।
गोलोक वृन्दावन-सद्विहारः
जीयात् स गौरः करुणावतारः ॥ ६ ॥

जो उन्नत उज्ज्वल प्रेमके देनेवाले हैं, जो सर्वोत्तम भक्ति श्रीनामसंकीर्त्तनके विधाता—प्रवर्त्तक हैं, उन गोलोक और वृन्दावनमें नित्य विहार करनेवाले करुणाके अवतार श्रीगौरसुन्दरकी जय हो ॥ ६ ॥

सदा हरेकृष्णसुगानमत्तः
योगीन्द्रमुनीन्द्रसमाधिवित्तः ।
दत्तव्रजप्रेमसुधासुसारः
जीयात् स गौरः करुणावतारः ॥ ७ ॥

जो 'हरे कृष्ण' इस नामको कीर्त्तन करनेमें सर्वदा प्रमत्त हैं, जो योगियों और श्रेष्ठमुनियोंकी केवल समाधिमें ही पाये जानेवाली सम्पत्ति हैं तथा जिन्होंने अमृतके सारस्वरूप व्रजप्रेमका वितरण किया है, उन करुणावतार श्रीगौरसुन्दरकी जय हो ॥ ७ ॥

कवाटवक्षोनवपद्मनेत्रः
श्रीसच्चिदानन्दघनासुगात्रः ।
स्वाङ्गप्रभानिन्दितकोटिमारः
जीयात् स गौरः करुणावतारः ॥ ८ ॥

जिनका वक्षःस्थल कपाटोंके समान विस्तीर्ण है और नेत्र नये खिले हुए कमलकी तरह हैं, जिनका चित्त तथा अङ्ग सच्चिदानन्द हैं, जो अपने अङ्गकी प्रभासे करोड़ों कामदेवोंको भी मात करते हैं, उन करुणावतार श्रीगौरसुन्दरकी जय हो ॥ ८ ॥

नीलाद्रि-शुभ्रांशु-सुधाचकोरः
रथाग्रसङ्गीतसुधाविधूरः ।
श्रीवैष्णवव्रातलसच्छरीरः
जीयात् स गौरः करुणावतारः ॥ ९ ॥

जो नीलाचलचन्द्र—जगन्नाथदेवकी ज्योत्सना—सौन्दर्यको पान करनेमें चकोर हैं, जो रथके आगे संकीर्त्तन रूपी अमृतका आस्वादन करनेमें बड़े लोलुप हैं, जिनका श्रीअङ्ग वैष्णव-चिन्होंसे सुशोभित है, उन करुणाके अवतार श्रीगौरसुन्दरकी जय हो ॥ ९ ॥

भक्तावलीमानसराजहंसः
संन्यासि-भूदेवकुलावतंसः ।
श्रीमज्जगन्नाथशचीकुमारः
जीयात् स गौरः करुणावतारः ॥ १० ॥

जो भक्तोंके चित्त-सरोवरमें विहार करने वाले राजहंसके समान हैं, जो संन्यासी और ब्राह्मण कुलके शिरोमणि हैं, उन जगन्नाथ मिश्र और शचीदेवीके पुत्र श्रीगौरसुन्दरकी जय हो ॥ १० ॥

गौरस्तुतिं गायति भक्तिपूर्वं
प्राप्नोति सुप्रेमसुधां सः सर्वम् ।
त्रितापदावानल-दुःखमुक्तः
प्रमोदते कृष्णपदाब्जभक्तः ॥ ११ ॥

जो लोग भक्तिके साथ श्रीगौरसुन्दरकी स्तुति गान करते हैं, वे पूर्ण प्रेमामृतको प्राप्त करते हैं, त्रिताप-दावानल दुःखसे मुक्त हो जाते हैं तथा श्रीकृष्णके चरण-कमलोंमें भक्तिलाभ कर परमानन्द प्राप्त होजाते हैं ॥ ११ ॥

आलवारोंकी जीवनी

(१) आलवार या दिव्यसूरि

'आलवर' शब्दका अर्थ

'आढ़वार' या 'आलवार'—शब्द दक्षिण भारतके तमिल भाषाका शब्द है । संस्कृत भाषामें इसका अर्थ—दिव्यसूरि, दिव्ययोगी अथवा नित्ययोगी है । विशिष्टाद्वैतके मतानुसार श्रीरामानुज सम्प्रदायके अत्यन्त प्राचीन सिद्ध पार्षद महात्मा आलवारके नामसे प्रसिद्ध हैं ।

आलवारोंकी संख्या

किसी-किसीके मतसे आलवारोंकी संख्या दस है तो किसी-किसीके मतानुसार बारह है । श्रीनारायणके इन पार्षदोंने वैकुण्ठसे उतर कर दक्षिण भारतके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें विभिन्न समयोंमें जन्म ग्रहण किया था । इनका जीवन-वृतान्त संस्कृत भाषामें लिखित 'दिव्यसूरि चरितम्' और 'प्रपन्नामृतम्', तमिल और संस्कृतमिश्र मणिप्रवाल भाषामें लिखित 'प्रबन्धसार', और 'उपदेशरत्नमाला', एवं तमिल भाषामें लिखित 'पढ़नडई', और 'विलक्कम'—नामक ग्रन्थों पाया जाता है ।

प्रपन्नामृत ग्रन्थमें इन आलवारोंका नाम निर्देश बड़ी सुन्दरताके साथ इस पद्यमें किया गया है—

"कापारभूतमहदाह्वयभक्तिसाराः
श्रीमच्छठारिकुलशेखरविष्णुचित्ताः ।
भक्ताङ्घ्रिरेणुमुनिवाहश्चतुष्कविन्द्राः
ते दिव्यसूरय इति प्रतिथा दशोर्व्वां ॥
गोदायतीन्त्रमिश्राभ्यां द्वादशैतान विदुर्व्वुधाः ।
विश्रृज्य गोदां मधुरकविना सह सत्तम । केचिद्द्वादशसंख्यातान् वदन्ति विबुधोत्तमाः ।"

संस्कृत और तमिल भाषाओंमें आलवारोंके नाम

आलवारोंके दो प्रकारके नाम मिलते हैं । एक तो संस्कृत नाम और दूसरा तमिल नाम । ये नाम इस प्रकार हैं—

संस्कृत नाम	तमिल नाम
१—कापारमुनि या सरोयोगी	पोयगै आलवार
२—भूत योगी	पुदत्तालवार
३—भ्रान्तयोग या महत्योगी	पे आलवार
४—भक्तिसार	तिरुमड़िसैप्पिरान आलवार
५—शठारि, शठकोप, परांकुश वकुला भरण	नम्मालवार
६—कुलशेखर	कुलशेखर आलवार
७—विष्णुचित्त	पेरी आलवार

८—भक्तपदरेणु तोण्डरडिप्पोली आलवार
९—मनिवाहन, योगीवाहन या प्राणनाथ तिरुप्पाणि आलवार
१०—चतुष्कवि, परकाल तिरुमंगैयालवार

ये सर्ववादीसम्मत दस आलवार हैं । इनके अतिरिक्त कोई-कोई—

११—गोदा अण्डाल (रंगनायकी)
१२—रामानुज यंवारुमानार, उदैयावार या इलाही आलवार

--इन बारहोंको आलवार या दिव्यसूरि कहते हैं । दूसरे कतिपय लोग गोदादेवीके बदले मधुर कविको दिव्यसूरियोंकी तालिकामें अन्तर्भुक्त करते हैं--

(११) मधुर कवि मधुरकविगलआलवार

श्रीरङ्गनाथके मन्दिरमें और पेरेम्बेदूरमें इन आलवारोंकी मूर्त्तियाँ संरक्षित हैं । प्रत्येक दिन वहाँ उनकी पूजा होती है ।

(२) श्रीगोदा देवी

आविर्भाव

प्राचीनकालमें दक्षिणभारतमें कावेरीके तटपर स्थित, श्रीविल्लीपुत्तूर नामक एक गाँवमें श्रीविष्णुचित्त नामके एक आलवार (विष्णु-पार्षद) रहते थे । उन्होंने वटपत्रशायी भगवान्‌की पूजाके लिये एक पुष्प-वाटिका और तुलसी-कानन बनाया था । वे नित्य प्रातःकाल उसे जलसे सींचते थे । एक दिन जब वे तुलसीके पौधोंको सींच रहे थे, तब वहाँ उन पौधोंके नीचे उनको एक परम मनोहर नवजात कन्या दिखलाई पड़ी । वे उसे उठाकर घर ले गये और उसे अपनी कन्या मानकर राजा जनककी तरह उसका लालन-पालन करने लगे । उन्होंने उसका नाम 'गोदा' रखा ।

अविर्भाव काल और पूर्व-परिचय

९७ कलिगताब्दके नल वर्षमें वैशाख महीनेमें पूर्वफाल्गुनी नक्षत्रमें गोदादेवी पृथ्वीपर आविर्भूत हुई थीं । स्थल-माहात्म्य नामक ग्रन्थमें लिखा हुआ है कि जब गरुड़जीने नारायणकी सेवा करनेके लिये विष्णुचित्तके रूपमें जन्म लिया तब लक्ष्मीजीने नारायणके निकट प्रार्थना की कि वह पृथ्वीपर विष्णुचित्तकी लड़कीके रूपमें जन्म ग्रहणकर उनकी (नारायणकी) सेवा करना चाहती है । नारायणने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और आज्ञा दी कि पृथ्वीके सभी नारायण-मंदिरोंमें लक्ष्मीजीकी इस गोदामूर्त्तिका अर्चन होगा । इनकी उपासनासे श्री-वैष्णवलोग मोक्ष प्राप्त करेंगे । नारायणकी तीन शक्तियोंमें इच्छा शक्ति प्रधानशक्ति है । इच्छा शक्ति-द्वारा श्री, भू और लीला अथवा नीला नामकी तीन शक्तियाँ मूर्त्तिमान होकर महाविष्णुकी सेवा करती हैं । नीला या दुर्गा शक्ति ब्रह्माण्डकी कर्त्री हैं । उन्हीं के अंशसे गोदादेवी पृथ्वीपर आविर्भूत हुई हैं ।

द्वादश आलवारोंमें गोदादेवी

रामानुज सम्प्रदायके वैष्णव गोदादेवीको आलवार मानते हैं । आलवारोंमें केवल गोदादेवी ही एक स्त्री आलवार हैं । कोई-कोई उन्हें आलवार नहीं मानते । उनके विचारसे आलवारों की संख्या १० है ।

गोदादेवीकी अद्भुत बालचपलता

विष्णुचित्त अहर्निश अपने पुष्पवाटिका और तुलसी-काननसे पुष्प और तुलसीपत्र चुनकर लाते और उनसे सुन्दर माला गूँथकर वटपत्रशायी भगवान्‌का शृंगार करते । गोदा धीरे-धीरे सयानी होने लगी । साथ ही साथ उसकी चपलता भी बढ़ने लगी । वह सर्वदा भगवत्कीर्त्तन किया करती । पिताके मंदिर चले जानेपर पुष्पवाटिका और तुलसीकानन की रखवाली किया करती । वह भगवान्‌को सर्वदा अपना प्रियतम मानती थी । उसके पिता जो सुन्दर सुन्दर मालाएँ वटपत्रशायी भगवान्‌के लिए बनाते, बाल-स्वभावसे गोदा अपने पिताकी अनुपस्थितिमें उन्हें स्वयं पहनकर अपनेको देखती कि उसका सौन्दर्य भगवान्‌को पसंद आवेगा या नहीं । एक दिन विष्णु-चित्तने गोदाको ऐसा करते हुए देख लिया । वे बड़े

बिगड़े और चिल्लाकर बोले—'बेटी। तूने यह क्या किया ? तू पागल तो नहीं हो गयी जो भगवान्‌के लिए तैयारकी गयी मालाको स्वयं पहनकर जूंठा कर रही है ? इससे बहुत बड़ा सेवा अपराध होता है। जीवोंके लिए भगवत् निर्माल्य ही ग्रहण करनेके योग्य होता है। किसी जीवकी कोई भी उपभुक्त वस्तु मैं जान बूझकर भगवान्‌को निवेदन नहीं कर सकता।' उस दिन विष्णुचित्त दुःखी होकर खालीहाथ वटपत्र-शायीके मंदिरमें गये, और अपना नित्य कृत्य समाप्त कर घर लौट आए। उसी दिन रातमें उन्होंने एक स्वप्न देखा कि वटपत्रशायी भगवान् उनके सामने आकर आज पुष्प और तुलसी अर्पण न करनेका कारण पूछ रहे हैं। विष्णुचित्त द्वारा कारण बतलाने पर उन्होंने कहा—गोदाकी पहनी हुई माला अपवित्र नहीं हुआ करती; बल्कि उन्हीं मालाओंको धारणकर मुझे अत्यन्त सुख होता है। तुम मुझे वही माला नित्य चढ़ाया करो।' विष्णुचित्तकी आँखें खुली तब बड़े विस्मित हुए और उन्हें अपनी कन्याके महत्त्वका पूरा निश्चय हो गया। वे उसके सौभाग्यकी सराहना करने लगे तथा उसकी उपभुक्त माला और पुष्प तुलसी प्रति-दिन वटशायी भगवान्‌को निःसंकोच चित्तसे अर्पण करने लगे।

गोदामें भगवत्प्रेमका विकास

आयुवृद्धिके साथ-साथ गोदाके हृदयमें भगवत् प्रेमकी वृद्धि होने लगी। क्रमशः भगवत्प्रेमसे सिक्त उसकी हृदयगत मनोवृत्तियाँ प्रस्फुटित होने लगीं। उसकी विरह-व्यथा बढ़ती गयी। उसके प्राण निर-न्तर अपने जीवनधनमें ही अटके रहते थे। नारा-यणके अतिरिक्त किसी भी मरणशील मानवका पाणि-ग्रहण करनेका विचार उसके हृदयमें लेशमात्र भी स्थान नहीं पाया। वह सदा श्रीकृष्ण और गोपियोंकी अत्यन्त आश्चर्यजनक और मनोहर लीलाओंका चिन्तन किया करती, उसकी आँखोंमें, हृदयमें, प्राणों में, रोमरोममें भगवान् ही छाए थे। वह सर्वदा गोपी भावसे विभावित रहती और भगवत्प्रेम प्राप्त करने के लिए उसकी अनेक प्रकारकी विचित्र चेष्टाएँ दिखाई पड़ने लगीं। हृदयके भाव कुछ-कुछ अब बाहर भी व्यक्त होने लग गये थे।

विष्णुचित्त द्वारा विवाहका प्रस्ताव और क्षमा प्रार्थना

विष्णुचित्तने गोदाके भावोंको देखकर समझा कि वह विवाह करना चाहती है। इसलिए उन्होंने उसके सामने विवाहका प्रस्ताव रखा। गोदा किसी मरणशील मानवके साथ विवाह करनेकी बात सुनकर अत्यन्त दुःखित और क्रोधित हुई। वह निर्भय होकर स्पष्टरूपमें अपने धर्म पितासे बोली—'पिताजी! किसी भी मर्त्य मानवके साथ विवाह दिये जाने पर मैं अपना न प्राण रखूँगी।'

श्रीरंगनाथके साथ विवाह

अब विष्णुचित्तको यह समझते देर न लगी कि गोदाका मन भगवान्‌के रूपपर ही न्यौछावर हो चुका है और वह किसी भी मनुष्यसे विवाह न करेगी। किन्तु प्रश्न तो इस बातका था कि गोदा नारायणकी किस मूर्त्तिके प्रति आकृष्ट है। उन्होंने एक उपाय सोचा। वे बड़े प्रेम और श्रद्धासे गोदाको नारायणके अष्टोत्तरशत (१०८) प्रकारकी मूर्त्तियोंके नाम, रूप, गुण और माहात्म्य सुनाने लगे। उन्होंने कावेरी तट स्थित श्रीरंगनाथका माहात्म्य और उनकी दयालुताकी बात सुनायी। गोदा श्रीरङ्गनाथकी अर्चाकी बात परम कौतूहल और अत्यधिक उत्कंठासे सुन रही थी। सुनते-सुनते उसकी आँखें सावन-भादोंकी तरह बरस पड़ी। अब गोदाके लिए श्रीरङ्गनाथका वियोग एक-क्षण भी असह्य हो गया। वह रङ्गनाथके रूप और गुणोंपर आसक्त होगयी थी। विष्णुचित्त बड़े चिन्तित हुए कि गोदाका विवाह रङ्गनाथके साथ कैसे सम्पन्न हो ? चिन्ता करते-करते वे सो गये। स्वप्नमें देखा कि श्रीरङ्गनाथ स्वयं उनके पास आकर गोदाके साथ विवाह करनेके लिए प्रस्ताव कर रहे हैं।

इधर श्रीरङ्गनाथने मंदिरके प्रधान अधिकारीको भी स्वप्नमें आदेश दिया कि वह बड़ी धूम-धामसे उनकी प्रियतमा गोदाको श्रीरङ्गक्षेत्रमें ले आवे। उसने

भगवत् आदेश समझकर छत्र, चँवर तथा राजकीय सम्मानके साथ गोदाको लानेके लिए बहुतसे सेवक को भेज दिया। ये लोग विल्लीपुत्तूर पहुँचे और विष्णुचित्तको श्रीरङ्गनाथका आदेश सुनाया। विष्णुचित्त अपने स्वप्नकी बात स्मरण कर तथा रङ्गनाथकी आज्ञा सुनकर आनन्दके मारे गद्गद् हो गए। उन्होंने सारी बातें अपने आराध्यदेव श्रीवटशायी भगवान्के चरणोंमें निवेदन किया। वटपत्रशायी भगवान्ने रङ्गनाथके साथ गोदाके विवाहके लिए सम्मति दे दी। फिर तो गोदाके लिए एक रत्नमय सिंहासन तैयार किया गया और उसके चारों ओर पर्दा लगाया गया। गोदादेवी अब किसी मरणशील मानवके दर्शनकी वस्तु न थी। उन्होंने अब भगवान्के अन्तःपुरचारिणी होनेका अधिकार प्राप्त कर लिया था।

गोदादेवीका रंगनाथमें विलीन होना

इधर ढोल बजने लगे। शंख-ध्वनिसे दिशाएँ गुंजरित होने लगीं। ब्राह्मण वेद-मंत्रोंका पाठ करने लगे। इस तरह खूब धूम-धाम और राजकीय सम्मान के साथ गोदादेवी श्रीरङ्गनाथके अन्तःपुरमें लायी गयीं। उस समय विष्णुचित्तके शिष्यस्थानीय मथुरा के राजा वल्लभदेव श्रीरङ्गनाथके मंदिरमें विस्मित होकर खड़े-खड़े देख रहे थे। देवी प्रेममें मतवाली होकर मणिमय पालकीसे उतर कर सीधे भगवान् रङ्गनाथकी शेषशय्याके ऊपर चढ़ गयी और सबके सामने देखते ही-देखते श्रीरङ्गनाथमें विलीन हो गयीं। भौतिक आँखें उन्हें और न देख सकीं। विष्णुचित्त और अन्यान्य दर्शकगण आनन्दाश्रुसे सिक्त होकर आत्म-विभोर हो गए।

दैव-वाणी

उसी समय एक दैव-वाणी हुई--'विष्णुचित्त! आजसे तुम मेरे ससुर हुए। हमलोग तुम्हारा सम्मान करते हैं। तब पंचरात्रके विधानके अनुसार विष्णुचित्तका सम्मान किया गया। फिर आज्ञा हुई कि वे विल्लीपुत्तूर जाकर वटपत्रशायी भगवान्की सेवामें ही जीवनकी अवशेष घड़ियां बितावें।

गोदादेवीका स्थितिकाल और उनके रचित ग्रन्थ

आधुनिक पण्डितोंके काल सम्बन्धी गवेषणाका अध्ययन करनेसे प्रतीत होता है कि गोदादेवी शकके दसवीं शताब्दीमें श्रीरङ्गक्षेत्रमें आयी थीं। उस समय यमुनाचार्य श्रीरङ्गनाथके मंदिरमें वर्त्तमान थे। इस विषयमें वक्तव्य यह है कि गोदादेवीकी तरह कुलशेखरकी कन्याका भी श्रीरङ्गनाथने पाणिग्रहण किया था। कुलशेखर यमुनाचार्यके समसामयिक थे। इस लिए यमुनाचार्यसे लगभग दो शताब्दी पूर्व श्रीगोदादेवीका अभ्युदय काल होना उचित है।

गोदादेवीने भक्तिरससे सने हुए उत्तम-उत्तम काव्योंकी रचनाएँ की हैं। तमिल भाषामें उनका रचित 'तिरुपावै' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। किसी-किसी के मतसे उनके रचित ग्रन्थका नाम 'नच्चियार तिरुमड़ि' है। द्राविड़ भक्तोंमें इन ग्रन्थोंका बड़ा आदर है।

—ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती

सज्जनतोषणी पत्रिकाका उद्देश्य

[श्रीसज्जनतोषणी-पत्रिका आजकल श्रीगौड़ीय पत्रिकाके रूपमें अवतीर्ण हुई हैं, तथा श्रीभागवत-पत्रिका श्रीगौड़ीय-पत्रिकाके अभिन्न तनु हैं। इस तरह सज्जनतोषणी और श्रीभागवत-पत्रिकाके उद्देश्योंमें कोई अन्तर नहीं। अतः हमने इस लेखमें सज्जनतोषणीकी जगह कहीं-कहीं 'श्रीभागवत-पत्रिका' का व्यवहार किया है।]

पत्रिकाका उद्देश्य

जहाँ तक मेरा ख्याल है, बहुतेरे श्रीसज्जनतोषणी पत्रिका (श्रीभागवत-पत्रिका) के उद्देश्यसे परिचित नहीं हैं। जब तक किसी विषयके उद्देश्यसे परिचित न हुआ जाय, उस विषयके सम्बन्धमें विचार प्रकाश नहीं किया जा सकता। अतः श्रीपत्रिकाका उद्देश्य व्यक्त कर रहा हूँ।

सज्जनतोषणी (श्रीभागवत-पत्रिका) सांसारिक अनित्य प्रसंगोंकी आलोचना न करेगी। ऐसे ग्राम्य समाचार तो आजकल बहुतसे समाचार-पत्रोंमें प्रतिदिन प्रकाशित होते ही रहते हैं। परन्तु इस पत्रिकाका उद्देश्य है,—जीवोंके उस नित्यधर्मकी आलोचना करना, जिससे उनका नित्य कल्याण अति सुगमतासे हो सके।

जीवोंके स्वरूपमें संसार नहीं है—संसार-निर्वाह करना धर्म नहीं है

जीवोंकी विशुद्ध अवस्थामें संसार नहीं होता। जड़बद्ध अवस्था ही जीवोंका संसार है। जड़के साथ जीवका जो सम्बन्ध होता है उसीसे सारे सांसारिक व्यापारोंकी उत्पत्ति होती है। संसार ही जीवोंकी उपाधि अथवा विकृत धर्म है। विशुद्ध चिद्गत प्रेम ही जीवोंका नित्य धर्म है। जीव शुद्ध चिद्वस्तु है, अतएव शुद्ध चिद्धर्म ही जीवका नित्य-धर्म है। जड़बद्ध होकर जीवके उसी नित्यधर्मके विकार-स्वरूप एक औपाधिक धर्मको ही आजकल जैवधर्म कहा जाता है। इसी कारण बद्धजीव सांसारिक व्यापारों को ही धर्म कहा करते हैं।

जीवका धर्म नित्य है और धर्म-विरुद्ध अवस्था अनित्य होती है

जो धर्म इस औपाधिक-धर्मको उर्द्धमुखी करते हुए विशुद्ध नित्यधर्मका आश्रय करनेमें समर्थ होता है, उसी धर्मको हमलोग धर्म कहते हैं, और जो धर्म औपाधिक-धर्मको सदाके लिए बना रखने अथवा उसे निम्नगामी कर विषयोंमें डुबो देना चाहता है, हम उसे अनात्म्य या अनित्य धर्म कहते हैं। अतएव अनित्य अथवा अनात्म्य धर्मोंको छोड़कर हम धर्मकी दो अवस्थाओंको लक्ष्य करते हैं अर्थात् पहली-धर्मकी विशुद्ध अवस्था और दूसरी-जैवधर्मकी विशुद्ध अवस्थाको लक्ष्य करने वाली एक प्रकारकी अवस्था।

धार्मिक व्यक्ति अथवा धर्मके लिए चेष्टा करने वाला व्यक्ति-दोनों ही सज्जन हैं

जैव धर्मकी विशुद्ध अवस्थाका नाम है—भगवत्प्रेम। यही जीवों के लिए चरम प्रयोजन है। बद्धा-अवस्थामें रह कर भी जिनमें भगवत्प्रेम रूपी धर्म प्रकाशित हो पड़ता है, वे लोग कृतकृत्य हो जाते हैं।

जिनके हृदयमें वह विमल धर्म अभी तो उत्पन्न नहीं हुआ है; परन्तु उसे उत्पन्न करनेके लिए अपने सम्पूर्ण जीवनकी सारी चेष्टाओंको लगा देते हैं—वे भी धन्य हैं। क्योंकि बहुत ही थोड़े दिनोंमें वे भी कृतकृत्य हो जाँयगे। हम ऐसे महापुरुषोंको ही सज्जन कहते हैं। उन्हें सन्तुष्ट करना ही इस पत्रिकाका एक मात्र उद्देश्य है। इसीलिए इस पत्रिकाका नाम सज्जन तोषणी है।

श्रीपत्रिकामें किन किन विषयोंका प्रकाशन होगा

भगवत्प्रेमका प्रचार करना ही इस पत्रिकाका मुख्य उद्देश्य है। प्रेमकी प्राप्तिमें सहायक प्रेमका अस्वादन करने वाले महापुरुषोंके जीवन-चरित्र तथा उनके रचित संगीत और ग्रन्थ आदि इस श्रीपत्रिकामें प्रकाशित होंगे। प्रेमी भक्त लोग जहाँ-जहाँ जिस-जिस

भगवत्सम्बन्धी प्रचार कार्योंको करेंगे, उन समस्त विषयोंका समावेश इस पत्रिकामें किया जावगा।

श्रीपत्रिकामें भक्तिकी आलोचना

भौतिक ज्ञान, विज्ञान, शिल्प, सभ्यता, समाज, नीति, वर्णाश्रमधर्म, वैराग्य तथा समस्त सुख-दुःख जनक शारीरिक व्यापार—ये सभी जीवोंकी बद्धदशा को आश्रय करके रहते हैं। इन सभी विषयोंमें हम दो प्रकारकी प्रवृत्तियोंको लक्ष्य करते हैं—बहिर्मुख प्रवृत्ति और अन्तर्मुख प्रवृत्ति। जब ये सब विषय जीवोंके विमल भगवत्प्रेममें सहायक होते हैं तब उनकी अन्तर्मुख प्रवृत्ति लक्षित होती है और जब ये भगवत्प्रेमका साहचर्य स्वीकार नहीं करते, बल्कि स्वयं एक-एक स्वातंत्र व्यापार हो पड़ते हैं, तब उनकी प्रवृत्ति बहिर्मुख होती है। जिन विषयोंमें अन्तर्मुख प्रवृत्ति दिखलायी पड़ती है उन्हें भक्ति कहते हैं। परन्तु बहिर्मुख प्रवृत्ति प्रबल होनेपर उन्हीं व्यापारोंको स्थूल होनेपर कर्म और सूक्ष्म होने पर ज्ञानकी संज्ञा दी जाती है। इस पत्रिकामें भक्तिका ही विवेचन होगा। ज्ञान और कर्मकी आलोचना नहीं की जायगी।

दूसरे दूसरे धर्मोंकी तुलनामूलक आलोचना तथा अपधर्म अथवा छलधर्मोंका खण्डन करना ही पत्रिका का उद्देश्य है

जिन स्थलोंमें विषय सम्बन्धी व्यापारोंका विचार करेंगे वहाँ भक्तिकी ही आलोचना होती रहेगी। कभी कभी अनर्थों और पापों की समालोचना की जायगी—उन्हें दूर करने के लिए, तथा कभी दूसरे-दूसरे धर्मोंकी समीक्षा होगी—भक्तिकी उत्कर्षता स्थापन करने के लिए।

भक्तिके नामपर आजकल जगह-जगह अवैध और भक्ति-विरोधी क्रिया-कलापोंका आचरण किया जाता है। यदि उन विषयोंको स्पष्ट-रूपसे दिखलाया नहीं जाय तो शुद्ध भक्तिकी विजय नहीं होती। इस लिए जीवोंके कल्याणके लिए शुद्ध भक्ति और छल धर्मोंमें परस्पर पार्थक्य विचार करनेका अधिक प्रयास किया जायगा।

वैष्णवधर्मका संस्कार नितांत आवश्यक है

हमारे पवित्र भक्तसमाजमें स्वार्थपरताके कारण जो अनर्थ-समूह प्रवेश कर गये हैं, उनका संशोधन करनेके लिए बरोप यत्न करूँगा। श्रीमन्महाप्रभु द्वारा उपदिष्ट और आचरित धर्मपुष्पमें आजकल जो विषाक्त कीड़े लग गए हैं, उन अनिष्टकारी कीड़ोंको उस धर्मपुष्पसे निकाल बाहर करना भी हमारा उद्देश्य है। ये कीड़े धर्मपुष्पोंका केवल सौरभ ही हरण नहीं कर रहे हैं, अपितु पुष्पोंको क्रमशः काट काट कर निःशेष करनेकी भी चेष्टा कर रहे हैं। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव, प्रभु नित्यानन्द और प्रभु बीरचन्द्रजीने वैष्णव संसार स्थापन करनेके लिए जिन सिद्धान्त बीजोंका रोपण किया था, वे बीज कहीं या तो उसर क्षेत्रोंमें पड़कर नष्ट हो गए हैं अथवा अनुपयुक्त भूमिमें बोये जाकर अनावश्यक वृक्ष हो उठे हैं। इस विषयमें प्रभुलोगों की इच्छाके अनुसार जो समयोचित कार्य जान पड़ते हैं उनका अनुमोदन करना ही इस पत्रिकाका उद्देश्य है।

हमें इस बातका विश्वास है कि समस्त साधु मण्डली तथा देश हितैषी और जीव-हितैषी महात्मा लोग हमारी पत्रिकाका पाठ आदरपूर्वक करेंगे। और समय समय पर हम जिन मङ्गलमय प्रस्ताओंको उत्थापन करेंगे, वे लोग उसकी विशेष आलोचना करेंगे।

—ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

मायावादकी जीवनी

[पूर्व प्रकाशित वर्ष १, संख्या १२, पृष्ठ २७३ से आगे]

शंकरका जन्म

मायावादके रक्षक, शून्यवादके पृष्ठपोषक, आधुनिक अद्वैतवादके प्रवर्त्तक तथा मायावादिकुलके चूड़ामणि श्रीपाद शंकराचार्यके जीवन-वृतान्तसे वर्त्तमान शिक्षित सम्प्रदायके प्रायः सभी लोग परिचित हैं—चाहे वह परिचय कुछ कम हो या अधिक। शंकर सम्प्रदायके अनेक बड़े-बड़े विद्वानोंने शंकर-विजय और शंकर दिग्विजय आदि ग्रन्थोंमें शंकरकी जीवनी सम्बन्धी अनेक बातोंको लिपिबद्ध किया है। मध्व-सम्प्रदायके मध्व-विजय तथा मणिमञ्जरी आदि प्रामाणिक ग्रन्थोंमें भी शंकरके जीवन-चरितसे सम्बन्धित अनेकानेक घटनाओंका विवरण पाया जाता है। शंकर सम्प्रदाय और मध्व सम्प्रदाय परस्पर विरोधी सम्प्रदाय हैं। आचार्यकी प्रकृत जीवनीसे परिचित होनेके लिए उक्त दोनों सम्प्रदायके ग्रन्थोंकी आलोचनाके सिवा कोई दूसरा पथ नहीं है। उल्लिखित ग्रन्थ ही पण्डित समाजमें प्रामाणिक ग्रन्थ माने जाते हैं। इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त और भी कई ग्रन्थोंमें आचार्य शंरककी जीवन सम्बन्धी बहुत सी बातें पायी जाती हैं। अतएव आचार्य शंकरके सम्बन्धमें कुछ अधिक लिखना अनावश्यक समझता हूँ। आचार्यशङ्करके आविर्भाव कालके सम्बन्धमें बहुतसे मत प्रचलित हैं। मेरा अनुमान है, लगभग ७०० ई. में उनका जन्म हुआ था। उनका जन्म केरल देशके अन्तर्गत चिदाम्बरम् नामक एक गाँवमें विशिष्टा नामकी एक ब्राह्मणीके गर्भसे हुआ था। विश्वजीत नामक एक विप्रने विशिष्टाका पाणिग्रहण किया था। बहुत दिनोंतक पुत्र न होनेसे विश्वजीत बड़े दुःखी हुए और अन्तमें घर-गृहस्थीसे नाता तोड़कर विशिष्टाको घरपर अकेली छोड़कर जंगलका रास्ता लिया। ये विश्वजीत ही पीछेसे शिवगुरुके नामसे प्रसिद्ध हुए।

इधर विशिष्टा घरमें अकेली रह गयीं। उन्होंने चिदाम्बरम्के ग्राम्य-देवता महादेवकी उपासनाको अपने जीवनका लक्ष्य स्थिर किया। उन्होंने उस शिव-मंदिरके प्रधान-पुजारीको (सेवाईतको) अपना गुरु बनाकर श्रीमहादेवके दैनिक पूजन-अर्चनमें ही अपना तन-मन-धन—सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। किन्तु कुछ ही दिनोंके बाद अकस्मात वे गर्भवती देखी गयीं। अब यह बात चारों तरफ फैल गयी। गाँवके नैतिक समाजने कलंकिनी और चरित्र-हीना समझकर उन्हें समाजसे बहिष्कृत कर दिया। विशिष्टा लज्जा, अपमान और लोकापवादसे मर्माहत होकर आत्म-हत्या करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया। ठीक उसी समय विशिष्टाके पिता मधमण्डनको स्वप्नमें आज्ञा हुई—'विशिष्टाके गर्भमें शंकर विद्यमान हैं। सावधान, विशिष्टा किसी प्रकार मरने न पावे।' मधमण्डन स्वप्नादेश प्राप्त होकर तत्क्षण अपनी कन्या विशिष्टाके पास आये और उसे आत्म-हत्या करनेसे रोका। कुछ ही दिनोंमें उन्हींकी देखरेखमें विशिष्टाके गर्भसे शंकर का जन्म हुआ।

शङ्कर एक प्रतिभासम्पन्न शिशु थे। उपनयन होनेके पहलेही उन्होंने संस्कृत-व्याकरण और कोष समाप्त कर डाला। आठवें सालमें उपनयन होनेपर वे वेद-शास्त्रके अध्ययनमें लग गए। थोड़े ही समयमें वेदोंको पढ़ लेनेके बाद छः दर्शनों और उपनिषदोंका अध्ययन कर लिया। कहते हैं—बचपनसे ही वे संसारके प्रति उदासीन थे। अध्ययन और शिवकी उपासनामें ही उनका सारा समय बीतता।

एक समय बालक शंकर अपनी माताके साथ किसी दूसरे गाँवको जारहे थे। रास्ते में एक छोटी सी नदी पार करनी पड़ती थी। वे दोनों उस नदीको

पार करने लगे। अकस्मात् माताने देखा तो क्या देखती है कि बालक शंकर नदीकी धारामें पड़कर डूब रहा है। अपने इकलौते प्राण-प्रिय पुत्रको इस तरह डूबते देख कर माताका हृदय टूक-टूक हो गया। उसके सब उद्योग व्यर्थ सिद्ध हुए। बड़ा ही करुणा-जनक दृश्य था। असहाय माता फूट-फूटकर बिलख रही थी। उस समय शङ्करने मातासे संन्यास लेनेकी अनुमति माँगी—'माताजी ! मेरा विवाह करनेके पहले ही यदि आप संन्यास ग्रहण करनेकी मुझे अनुमति दे दें तब मैं आत्म-रक्षा करनेकी चेष्टा करूँ। जननीने पुत्रकी बात सुनी और अगत्या संन्यास लेने की आज्ञा दे दी। शङ्कर जलसे निकलकर ऊपर आए और माताके साथ घर लौट आए।

—(१३०८ बंगाब्दमें प्रकाशित शिवनाथ शिरोमणि कृत शब्दार्थ मंजरीके परिशिष्टसे उद्धृत)

आचार्यके उक्त जीवन चरितसे पता चलता है कि वे शास्त्रकी वाणियोंसे अथवा अन्य सान्त्वनापूर्ण वचनोंके द्वारा माताको समझा बुझाकर उनसे अपने जगन्मङ्गलकर संन्यास धर्मको ग्रहण करनेकी आज्ञा प्राप्त करनेमें समर्थ न हो सके। बल्कि उन्होंने छल करके माताके वात्सल्यका सुयोग लेकर—एक छोटी-सी नदीमें डूबनेका बहाना दिखलाकर अपने यति धर्मके लिए आज्ञा प्राप्त की थी। अन्यान्य महापुरुषों के जीवनमें प्रायः ऐसी बातें नहीं पायी जातीं। जगत् गुरु श्रीचैतन्य देवने संन्यास ग्रहण करनेके समय अपनी वृद्धा माता शचीदेवी और युवती स्त्री विष्णु-प्रियादेवी—दोनोंको समझा-बुझाकर उनसे संन्यास ग्रहण करनेकी आज्ञा प्राप्त करनेका अभिनय दिखलाया है। अवश्य यहाँ श्रीचैतन्यदेव स्वयं भगवान्के अवतार हैं, और शङ्कर, उनके प्रियभक्त शङ्करके अवतार हैं। तात्पर्य यह है कि आचार्य शंकर जहाँ अपने युक्ति-तर्कको स्थापन करनेमें असमर्थ होते, वहाँ छल चातुरी और युद्ध इत्यादि तरह-तरहकी वृत्तियोंका अवलम्बन करनेमें भी हिचकते न थे। जैसा भी हो, छल-बल और कौशल—जिस तरहसे भी क्यों न हो अपना काम निकालनेकी प्रथा सभी समयोंमें दृष्टि-गोचर होती है।

आचार्य शङ्करने अपनी पाण्डित्य-प्रतिभासे अनेकानेक ग्रन्थोंकी रचना की है। ब्रह्म-सूत्र और अपने मत-पोषक कतिपय उपनिषदोंके ऊपर भाष्य रचना कर जगत्में अपनी अक्षय कीर्त्ति रख गए हैं। अपने मतकी स्थापना और प्रचारके लिए—दिग्विजयकी आशा लेकर उन्होंने नाना देशोंका भ्रमण किया था। उनकी दो एक दिग्विजयकी कहानियाँ नीचे दी जा रही हैं।

शंकर विजय

(क) आचार्य शङ्करकी जीवनी पढ़नेसे विदित होता है कि उनके साथ बहुतसे स्मार्त्त, शैव, शाक्त, और कापालिक विद्वानोंका शास्त्रार्थ हुआ था। महाराष्ट्र देशमें रहने वाले उग्रभैरव नामक एक कापालिकने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। किन्तु शङ्कर उसके चित्तको सुधार करनेमें असफल होकर उसकी ही युक्तियोंपर विश्वासकर उसे केवल आत्म-समर्पण ही नहीं किया, अपितु अपना सिर भी उसे समर्पण कर दिया। पादपद्मने—जो आचार्यके एक प्रिय शिष्य थे, कापालिक उग्रभैरवके हाथसे उनकी रक्षा की थी। इससे पता चलता है कि शङ्कर उक्त कापालिककी युक्तियोंका खण्डन करना तो दूर रहा उल्टे उसकी उन युक्तियोंसे प्रभावित होकर अपना मस्तक तक उसे समर्पण करनेके लिए बाध्य हुए थे।

(ख) कर्नाटक देशमें क्रकच नामक कापालिकोंका एक गुरु रहता था। उसके साथ भी शङ्करका संघर्ष हुआ। शङ्कर शास्त्रार्थके द्वारा उसे अपने मतमें लाने में असमर्थ होकर उज्जैनीके तत्कालीन राजा सुन्धवा द्वारा युद्धमें उसका वध करवा डाला। यहाँ शङ्करके योगबल अथवा युक्तिबल किसीने कुछ भी काम नहीं दिया।

(ग) 'अभिनव गुप्त' नामक आसाम प्रदेशके एक शाक्त आचार्यके साथ शङ्कराचार्यका मायावादको लेकर शास्त्रार्थ हुआ। अभिनवगुप्त शङ्करके प्रभाव और ऐश्वर्यसे मुग्ध होकर उनका शिष्य हो गया।

किन्तु आचार्य अपने मायावादके सिद्धान्तोंसे अपने शिष्यका हृदय न जीत सके । इसका प्रमाण यह है कि अभिनव गुप्तके अभिचार-प्रयोग द्वारा शङ्कर विषमय भगन्दर रोगके शिकार हो गये थे—ऐसा प्रवाद है । आश्चर्यकी बात है, दूसरोंके द्वारा (अभिचार प्रयोग) इस प्रकार किसी रोग द्वारा आक्रान्त होनेकी बात चिकित्सा-वैज्ञानिक भी स्वीकार नहीं करते । जैसा भी हो, अभिनवके चरित्रपर ऐसा दोषारोप करनेसे प्रतीत होता है कि यद्यपि अभिनव गुप्त शङ्करके ऐश्वर्यसे मुग्ध होकर उनका शिष्य हो गया था, तथापि युक्ति और तर्कमें शङ्करसे उसका मेल नहीं था । इसीलिए पद्मपादने एक मिथ्या अपवाद लगाकर उसको मार डाला ।

(घ) शङ्कर जब उज्जैनी नगरमें गये थे, तब आचार्य भाष्करके साथ उनका मायावादके सिद्धान्तों को लेकर वाद-विवाद हुआ । आचार्य भाष्कर शैव-विशिष्टाद्वैत मतके प्रचारक थे । शङ्कर उन्हें किसी प्रकार भी अपने मतमें न ला सके,बल्कि स्वयं भाष्कर के साथ शास्त्रार्थमें पराजित हो गए । भाष्करने वेद और वेदान्तपर भाष्य रचना कर शङ्करके मायावाद का सुष्ठुरूपसे खण्डन किया है । इतना ही नहीं, उन्होंने अपने वेदान्त भाष्यमें शङ्करको मायावादी महायानिक बौद्ध प्रमाणित कर दिया है । उन प्रमाणों का उल्लेख मैंने पहलेही 'शङ्कर महायानिक बौद्ध हैं' इस प्रसङ्गमें किया है । यहाँ मैं उनका पुनरुल्लेख करना अनावश्यक समझता हूँ । उससे प्रमाणित होता है कि शङ्कर भास्कराचार्यको अपने सिद्धान्तोंसे प्रभावित तो कर ही नहीं सके वरन् उल्टे वहीं उनका असल स्वरूप—महायानिक बौद्ध प्रकाशित हो पड़ा था ।

(ङ) उभय भारती मण्डन मिश्रकी पत्नि एक परम विदुषी महिला थीं । आचार्य शंकर द्वारा मण्डन मिश्रके पराजित होनेपर उभय भारतीने शंकरको रति या काम शास्त्रसे सम्बन्धित शास्त्रार्थमें परास्त कर दिया । शंकर एक स्त्रीके निकट पराजित होकर बड़े संकटमें पड़े । कोई दूसरा उपाय न देखकर वे अपने *योगबलसे किसी राजाके मृत शरीरमें प्रवेश कर* राजाके अन्तःपुरमें प्रवेश कर गए और राजमहिषीके निकट एक मास तक काम या रतिशास्त्र के सम्बन्धमें शिक्षा प्राप्त करते रहे । इससे शंकरकी महानताका परिचय नहीं मिलता । किन्तु किसी भी संन्यासीके पक्षमें इस प्रकार रतिशास्त्रकी आलोचना या शिक्षा करनेसे उसका यतिधर्म नष्ट हुआ या नहीं—यह विवेचना करनेकी बात है । हमारे विचारसे कोई भी नैष्ठिक ब्रह्मचारी या संयासी यदि 'काम' शास्त्रके विधानोंसे अपरिचित है तो इसके लिए यह प्रशंसाकी बात है । उसकी यह अनभिज्ञता किसी प्रकार भी निन्दनीय नहीं । ऐसी अवस्थामें अपने विजयकी लालसासे एक पराई स्त्रीसे रति शास्त्रकी शिक्षा ग्रहण करना शंकर जैसे यतिको शोभा नहीं देता ।

(च) मण्डन मिश्र ही शंकर विजयके प्रधान विजय-स्तंभ हैं । मण्डन मिश्र उस समय स्मार्त्त और कर्म-मीमांसाके एक प्रकांड और प्रख्यात आचार्य थे । शंकरकी विजय केवल बौद्धों, कापालिकों, शाक्तों, स्मार्त्तों और कर्मियों तक ही सीमित थी । मण्डन मिश्र को पराजित कर उन्होंने जो विजयका डंका बजाया था, उससे उन्होंने केवलमात्र भोगजनक कर्मोंके ऊपर ही विजय पायी थी । कपालिकोंकी प्राकृत (भौतिक) तांत्रिक उपासना, शाक्तोंके पंचमकार, वामाशक्तिकी आराधना, जैमिनिके भोगजनक कर्म जड़वाद और स्मार्त्तोंकी पंचोपासना—इन सबसे ज्ञानकी श्रेष्ठता तो स्वतः सिद्ध है । अतः तत्तत् क्षेत्रोंमें विजयका डंका बजाना कोई विशेष महनीयताका परिचायक नहीं । आचार्य भाष्करने इस बातको उसी समय प्रमाणित कर दिया था ।

(छ) आचार्यके जीवनमें और भी एक बात लक्ष्य करने योग्य है । वह बात यह है कि आचार्य पर जब कभी कोई विपत्ति आयी, उनके शिष्य पद्मपादने उनकी रक्षा की है । आचार्यके जीवनाकाशमें पद्मपाद निर्मल पूर्णचन्द्रकी तरह प्रकाशित हैं । पद्मपादने शारीरिक भाष्य प्रकाशित होनेके पहले ही वेदान्त-भाष्यकी रचना की थी । कुछ दिनों बाद वही

भाष्य उनके मातुल द्वारा चुराए जानेपर वे बड़े दुःखित हुए। उनका हृदय टूक टूक हो गया। इसे देखकर आचार्य शंकरने उन्हें आश्वासन दिया—'पद्मपाद ! तुम कोई चिन्ता न करो।' तुम्हारे सूत्र-भाष्यके पहले चार सूत्रोंका भाष्य मैंने कंठस्थ कर रखा है। तुम उसे श्रवण करो।' इससे देखा जाता है कि आचार्य शंकरने पद्मपादकी वेदान्त टीकाको कंठस्थ कर अपने भाष्यकी रचनासे पहले ही उसे ज्यों-का-त्यों सुना दिया था। इस घटनाके बाद शंकरने जब सौराष्ट्र देशकी यात्रा की थी, उस समय उनका विख्यात मायावादी भाष्य पहले पहल प्रकाशित हुआ। पद्मपाद की पाण्डित्य प्रतिभा और क्रियाकलापोंकी जैसी ख्याति सुनी जाती है, उससे प्रतीत होता है कि इनके भाष्यका अवलम्बन करके ही शंकरने अपने विख्यात भाष्यकी रचना की है। ऐसी अवस्थामें इन दोनोंमें आदि भाष्यकार आचार्य शंकरको माना जाय या पद्मपादको—यह विवेचनाका विषय है। अनन्तोगत्वा पद्मपाद शंकरके समस्त विषयोंमें रक्षक और अवलम्बन थे—इस बातको निःसंकोच रूपमें कहा जा सकता है।

(ज) तिब्बतके बौद्ध लामाके साथ शंकर शास्त्रार्थमें पराजित हुए। लामा तत्कालीन बौद्धोंमें जगत्गुरुके नामसे विख्यात थे। शास्त्रार्थ प्रारम्भ होनेके पहले दोनोंने प्रतिज्ञा की कि, जो हार जावेगा उसे तप्त तेल से भरे कड़ाहमें गिरकर प्राण परित्याग करना पड़ेगा। शास्त्रार्थमें शंकर पराजित होकर पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार उबलते हुये तेलके कड़ाहमें गिरकर आत्म विसर्जन कर देह त्याग कर दिये। इस घटनाके सम्बन्धमें शिरोमणि महोदयने इस प्रकार उल्लेख किया है—

'आचार्य शंकरने बौद्ध जगद्गुरुसे शास्त्रार्थमें पराजित होकर अपनी प्रतिज्ञानुसार उबलते हुए तेलके कड़ाहमें गिरकर शरीर परित्याग कर दिया। इस प्रकार ८१२ ई० में (?) जगत्की एक उज्जल ज्योति श्रीशंकराचार्यका देहावसान हुआ।

—(शब्दार्थ मंजरीका परिशिष्ट)

स्मरण रहे कि आज भी तिब्बतमें उक्त शंकर-कटाह विद्यमान है। लामा लोग उसे विजय-वैजयन्ती का स्मृति चिह्न मानकर उसका आदर और सम्मान करते हैं। शंकर विजयका यही सच्चा इतिहास है।

(क्रमशः)

गीताकी वाणी

(८)

पूर्व लेखमें स्थित-प्रज्ञ व्यक्तिका लक्षण बतलाया गया है। देह और मनके धर्म को छोड़कर आत्मधर्म में सम्पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित होना ही स्थितिप्रज्ञ होना है। सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, शोक-मोह, कामना आदि शारीरिक और मानसिक धर्मोंका परित्याग करनेसे स्थित-प्रज्ञ हुआ जा सकता है। स्थित-प्रज्ञ व्यक्ति अपनी इन्द्रियोंको अपनी इच्छाके अधीन रखकर समस्त क्रियाओंको करता है। भोगी पुरुषकी इन्द्रियाँ विषयोंके प्रति आसक्त हो जाती हैं। किन्तु स्थित-प्रज्ञ व्यक्ति अपने प्रयोजनके अनुसार स्वेच्छासे अपनी इन्द्रियोंका संचालन करते हैं। कोई भी विषय उनकी इन्द्रियोंको अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकता। इस विषयमें श्रीमद्भागवतमें कहे गये महाभागवतोंके लक्षण सम्बन्धी—

'त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठ-
स्मृतिरजितात्म-सुरादिभिर्विमृग्यात्।
न चलति भगवत्पदारविन्दात्
लवनिमिषार्द्धमपि यः वैष्णवाग्र्यः॥'

—श्लोककी आलोचना करनेसे पता चलता है कि महाभागवत वैष्णव ही यथार्थतः स्थित-प्रज्ञ होते हैं, क्योंकि अपनी इन्द्रियोंको भगवान्‌की सेवामें नियुक्त करनेसे वे स्वभावतः स्थित-प्रज्ञ हो जाते हैं। इन्द्रियों को बलपूर्वक दमन करनेकी चेष्टासे स्थित-प्रज्ञ नहीं हुआ जाता, यह बात अगले श्लोकमें स्पष्ट कर दी गयी है। अर्थात् रोगी व्यक्ति विषयोंको भोगनेमें अ क्षम होनेके कारण उनसे निवृत्त तो रहता है, परन्तु उसकी भोग-पिपासा नष्ट नहीं होती। रोग दूर होनेपर फिर भोग करूँगा—ऐसी कामना उसके हृदयमें प्रबल रहती है। किन्तु परमात्म-वस्तुके दर्शनसे वैसी वासनाएँ समूल ध्वस हो जाती हैं। वैष्णवोंकी इन्द्रियाँ कृष्ण-प्रीतिमें सर्वथा संलग्न रहनेके कारण उनकी अपने सुखकी कामनाएँ स्वयं नष्ट हो जाती हैं। आत्म-साक्षात्कारके बिना विषयोंके प्रति आसक्तिका कभी नाश नहीं होता। कोई-कोई अपनी इन्द्रियोंको बल-पूर्वक दमन करनेकी चेष्टा करते हैं, किन्तु मनका दमन न कर सकनेके कारण उनका असंयत मन दूसरी-दूसरी इन्द्रियोंको विषयोंकी तरफ खींच लेता है। किन्तु भगवान्‌के नाम, रूप, गुण और लीला आदि के श्रवण-कीर्त्तनमें नियुक्त किया हुआ चित्त सहज ही इतर अभिलाषाओंका परित्याग कर भगव-त्सेवा-सुख अनुभव करा कर विषयभोग-पिपासाको दूर कर देता है।

विषयोंका चिन्तन करने वाले पुरुषकी उन विषयों-में आसक्ति हो जाती है। आसक्तिसे काम उत्पन्न होता है। कामनानुसार विषयोंकी प्राप्ति न होनेसे अथवा काममें बाधा पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध उत्पन्न होनेसे कर्तव्याकर्त्तव्यका विवेक नष्ट हो जाता है। अविवेकसे स्मृतिभ्रंस और स्मृतिभ्रंससे बुद्धिका नाश होजाता है। उससे फिर सर्वतोभावेन विनाश हो जाता है अर्थात् वह संसार सागरमें डूब जाता है। इसीलिए योगी पुरुष विषय-सुखकी कामना नहीं करते। उनकी इन्द्रियाँ उस सर्पके समान निस्तेज और अक्षम हो जाती है, जिसके विषके दाँत उखाड़ लिए गये हों। विषयोंके प्रति ऐसे लोगोंका न तो अनुराग ही होता है और न विद्वेष ही। अर्थात् अनुराग—भोगकी कामना और विद्वेष—त्याग करने की चेष्टा, ये दोनों कर्म और ज्ञानके कार्य हैं। भगवद्भक्त कर्म और ज्ञानसे दूर रहते हैं। वे केवल भगवत्सेवामें निमग्न रहते हैं। इसलिए उनमें विषय भोगकी चेष्टाका सर्वथा अभाव होता है। उनमें जो चेष्टा होती है उसे वे भगवान्‌की सेवामें लगा देते हैं न कि ज्ञानी की तरह उसे अनिष्टकारक समझकर त्याग करते हैं। राग-द्वेष से शून्य होकर विषयोंक भगवत्सेवाके लिए ग्रहण करनेसे आत्माकी प्रसन्न सहज ही साधित हो जाती है और आत्माकी प्रसन्नता से शीघ्र ही सभी दुःखोंका अन्त हो जाता है तथा बुद्धि स्थिर हो जाती है। विषय और इन्द्रियोंको भगवत्सेवामें नियुक्त करना ही युक्त-अवस्था है। इसके विपरीत आत्म सुखकी चेष्टा ही 'अयुक्त' अवस्था है। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूपगोस्वामीके निकट इन दोनों अवस्थाओंका वर्णन किया था जिसका उल्लेख श्रीरूपगोस्वामीने भक्तिरसामृतसिन्धुमें किया है—

प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः।
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते॥
अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः।
निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥

जगत्‌की प्रत्येक वस्तु द्वारा श्रीहरिकी सेवा होती है। सभी वस्तुएँ नश्वर हैं और उनमें आसक्त रहने से विषयोंसे निवृत्ति नहीं हो सकती—ऐसा समझकर हरिसेवाकी वस्तुओंको भी त्याग देना—निर्विशेषवादी ज्ञानियोंकी ऐसी चेष्टाको फल्गुवैराग्य या अमुक्त अवस्था कहते हैं। विषयोंमें आसक्ति-शून्य होकर केवल शरीर धारणके उपयोगी वस्तुओंको स्वीकार कर सभी वस्तुओं और अपने इन्द्रियोंको कृष्णसेवामें नियुक्त करना ही युक्तावस्था या युक्त वैराग्य है यही वैराग्य अथवा अवस्था भगवद्भक्तोंकी स्वाभाविक अवस्था या वैराग्य है। अभक्त लोगोंमें आत्मभावना का अभाव होनेसे उनमें शान्तिका भी अभाव होता है।

कृष्ण भक्त निष्काम अतएव शान्त ।
भुक्ति मुक्ति-सिद्धि कामी सकलई अशान्त ॥

श्रीमन्महाप्रभुने अतीव प्राञ्जल भाषामें इन बातों का तात्पर्य समझाया है। अन्तःकरणके वशीभूत नहीं होनेसे आत्म-चिन्तन नहीं किया जा सकता । विषयोंमें आसक्त चित्त आत्मचिन्तनसे उदासीन रहनेके कारण सर्वदा अशान्त रहता है । और अशान्त व्यक्ति कभी भी यथार्थ सुखका अनुभव नहीं कर पाता । जिस पुरुषका चित्त विषयोंकी ओर दौड़ता है उसकी प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि नष्ट हो जाती है । इसलिये इन्द्रियाँ वशीभूत न होनेसे अनिष्ट होनेकी संभावना होती है । तत्त्वज्ञ पुरुष समस्त कर्मोंका परित्याग करनेका अधिकारी होता है । किन्तु अज्ञ पुरुष विषयोंमें निमग्न हो जाता है ।

जीव दो प्रकारका होता है-ज्ञानी और अज्ञानी । अज्ञानीकी रात्रि ज्ञानियोंके लिए दिन होता है और अज्ञानियोंका दिन ज्ञानियोंके लिए रात होती है । आत्मज्ञानसे युक्त बुद्धि ही अज्ञानी पुरुषके लिए रात है, क्योंकि वे इस विषयमें सोते रहते हैं अर्थात् अज्ञानी पुरुषोंमें आत्मज्ञान लाभ करनेकी चेष्टा नहीं होती । किन्तु ज्ञानी पुरुषोंके लिए वही दिन है । क्योंकि भगवत्तत्त्वके विषयोंमें वे सजग रहते हैं । अज्ञानी पुरुष विषयोंमें आसक्त होकर सर्वदा विषयोंकी सेवा करते करते शोक-मोहसे उत्पन्न सुख-दुःखोंका अनुभव करते-करते क्रमशः अधोगति लाभ करता है । और स्थित-प्रज्ञ पुरुष विषयोंसे दूर रहकर आत्मज्ञान का अनुशीलन करते-करते परम विषय भगवान्को प्राप्त होकर नित्यसुखका अधिकारी होता है ।

अतएव जैसे समुद्रमें असंख्य नद-नदियोंका जल प्रवेश करनेपर भी उससे समुद्रमें कोई विकार उत्पन्न नहीं होता, वैसे ही आत्मानुशीलनमें निरत पुरुषोंका चित्त सर्वदा भगवत् चिन्तनमें निमग्न रहने के कारण सांसारिक विषय उनके निकट आने पर भी वे उनमें आसक्त नहीं होते । अतः उनके चित्तमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न नहीं होता । ऐसे पुरुषोंमें भोग-वासनाएँ न होनेके कारण वे शान्ति प्राप्त करते हैं । चित्तकी इसी अवस्थाका नाम ब्राह्मी अवस्था है ।

अपनी इन्द्रियोंको भगवत्कथा श्रवण-कीर्त्तन और भगवत्सेवामें नियुक्त करनेसे भोग-वासनाओं को दूर करना सहज होता है और यही यथार्थ ब्राह्मी स्थिति है । वैसी स्थिति प्राप्त हुए व्यक्तिका ज्ञान अज्ञान द्वारा कभी आवृत नहीं होता, वह कभी भी मोहान्ध कूपमें नहीं गिरता ।

द्वितीय अध्याय समाप्त

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिभूदेव श्रौति महाराज

भजन लालसा

बड़ी कृपा की, गौड़वन में, गौद्रुम दिया स्थान
आज्ञा दी मुझे, इस व्रज में बस कर, हरिका करना गान ॥१॥
किन्तु प्रभु कब, योग्यता देंगे दयाकर दास प्रति
चित्तस्थिर होगा, सकल सहूँगा एकान्त भजूँगा हरि ॥२॥
शैशव, यौवन, जड़ सुख संगसे चित्त हो गया मंद
निज कर्म्मके दोष से देह भी हो गयी भजन में प्रतिबंध ॥३॥
वृद्धापन इस पर, पंचरोग में आहत, भजूँगा कब बोलो,
रो रो कर, तुम्हारे चरण, पड़ा हूँ सुविह्वल ॥४॥

अनुवादक—श्रीसुशीलचन्द्र त्रिपाठी एम० ए०

ग्रन्थ-चक्रवर्त्ती—श्रीमद्भागवत

जगत्में जितने शास्त्र हैं, श्रीमद्भागवत उनमें शास्त्र-शिरोमणि, शास्त्र-सम्राट या ग्रन्थ-चक्रवर्त्ती हैं। मदीश्वर ॐ विष्णुपाद परमहंस श्री श्रीमद् भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरने कहा है—'श्रीमद्भागवत शास्त्र शिरोमणि हैं तथा वे निगम कल्पतरु के स्वयं गलित फल हैं। श्रीमद्भागवत ज्ञान-प्रदीप हैं। ये समस्त पुराणोंके अर्क-स्वरूप तथा हरि कथामयी मोहिनी हैं। इनका श्रवण करनेसे परमपुरुष अधोक्षज श्रीकृष्णके चरणोंमें शोक, मोह और भय को दूर करने वाली सेवा-प्रवृत्तिका उदय होता है। जो श्रीमद्भागवतका सेवन करते हैं उनके सारे कर्मफल नष्ट हो जाते हैं। श्रीमद् भागवत साक्षात् भगवान्का स्वरूप है। श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीमद्भागवतको साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन का स्वरूप कहा है, और इस महान् ग्रन्थको ही समस्त प्रमाणोंमें श्रेष्ठ प्रमाण माना है। पण्डितोंमें प्रचलित कहावत है—'विद्या भागवतावधि'। इससे पता चलता है कि श्रीमद्भागवत वेदशास्त्रोंका अंतर्निहित सार है। इस ग्रन्थका श्रद्धापूर्वक सेवन करने से जीव पंचम-पुरुषार्थ—भगवत् प्रेमको शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है। भागवत्-सेवन से बढ़कर कोई भी उत्तम विद्या नहीं है। यह अन्याभिलाष, ज्ञान और कर्मके आवरणसे मुक्त, अनुकूल रूपसे कृष्ण-सेवारूप उत्तमाभक्तिका आश्रय है। श्रीमद्भागवतको परमहंसी-संहिता, सात्त्वती-संहिता, वैयासकी या शुकगीता, ब्रह्मसूत्रभाष्य या सात्त्वत-श्रुति भी कहते हैं। महाभारतके अंतर्गत जैसे भगवद्गीता को गीतोपनिषद् कहते हैं, वैसे ही श्रीमद्भागवतको भी भागवतोपनिषद् कहते हैं।

दधिमंथनसे निकले हुए कोमल नवनीतकी तरह यह श्रीमद्भागवत वेद आदि शास्त्र-सागरका सार-संग्रह है। श्रीमद्भागवत अखिल श्रुतियोंका सार, अध्यात्म ज्ञानके लिए दीपक-स्वरूप और समस्त पुराणोंका रहस्य है। श्रीमद्भागवतके २।७।५१ श्लोकमें ब्रह्मा नारदको कहते हैं—'इस श्रीमद्भागवतको साक्षात् भगवानने मुझे सुनाया है।' दूसरे-दूसरे अंश या कलारूप शास्त्र-समूहोंका यह सार-संग्रह है। यह अंशी-शास्त्र है। साक्षात् भगवान् ही इस शास्त्रके रूपमें स्वयं विराजमान हैं। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर अपने टीकामें कहतेहैं—'न केवलमिदं शास्त्र-त्वेनैव मन्तव्यम्, किन्तु विभुतीनाम् संग्रहः। श्रीभगवद्गीतादिषु विभुति शब्देन अंशकलावता-राणामप्युक्तेः, साक्षात् भगवानेवायं शास्त्रं स्वरूपेण विराजति।'

श्रीमद्भागवत श्रीकृष्णके भुवनमंगल मूर्त्तिमान शाब्दिक अवतार हैं। जगद्गुरु विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर श्रीमद्भागवतके १२।१३।६ श्लोककी टीका में लिखते हैं—'यथैवावतारत्वादवतारमध्येकृष्णं गणयित्वा पुनरेतेचांसकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयंमिति' कृष्णस्य पृथग् गणना। तथैव पुराणत्वात् पुराणमध्ये श्रीभागवतं गणयित्वा तत्राष्टादशसाहस्रं श्रीभागवतमिष्यते इति पुनर्गणना पुराणचक्रवर्त्तित्व व्यञ्जिका।'

श्रीमद्भागवत के १२।१३।२-८ श्लोकमें श्रीसूत गोस्वामीने १२ पुराणोंके नाम उल्लेख किए हैं। जिनमें श्रीमद्भागवतका नाम भी उल्लिखित है। फिर अगले नवें श्लोकमें भी श्रीमद्भागवत्का नाम पनः उल्लेख किए हैं। यहाँ उनके द्वारा दो बार 'श्रीमद्भागवत्' नामके उल्लेख किए जानेका तात्पर्य यह है कि पृथ्वी पर अवतीर्ण होनेके कारण जैसे कृष्णकी गणना अवतारोंके अंतर्गत किए जाने

पर भी उन्हें समस्त अवतारोंके अवतारी—अंशीस्वरूप स्वयं भगवान् माना गया है, वैसे ही श्रीमद्भागवतमें पुराणोंके समस्त लक्षण देखकर सूतगोस्वामीने इसकी गणना पुराणोंके अन्तर्गत करके भी अन्तमें पुनः श्रीमद्भागवतका नाम पुनः उल्लेखकर उसका निरूपण पुराण-चक्रवर्त्तीके रूपमें ही किया है।

श्रीचक्रवर्त्ती टीका (श्रीमद्भा० १।१।१)—'यादःसु महामीन इव, मृगेषु यज्ञवराह इव, विहङ्गमेषु श्रीहंस इव, नृषु स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण इव, देवेषु उपेन्द्र इव, वेदेषु श्रीमद्भागवताख्यः शास्त्रचूडामणिः।'

वेदव्यासने भाद्रमासकी पूर्णिमा तिथिको श्रीमद्-भागवतको सम्पूर्ण किया था। इसीलिये भाद्रमासकी पूर्णिमाके दिन स्वर्णनिर्मित सिंहासनके ऊपर श्रीमद्भागवतको रखकर दान करनेका श्रीमद्भागवत और मत्स्य-पुराणमें बड़ा महात्म्य बतलाया गया है। श्रीचक्रवर्त्ती ठाकुरने भागवतके १२।१३।१३-१४ श्लोक की टीकामें लिखते हैं—'प्रौष्ठपद्यां भाद्रसम्बन्धिन्या-मिति तद्दिन एव श्रीमन्मुनीन्द्रेण शास्त्रमेतत् समाप्तीकृत-मिति पाद्मोत्तरखण्डगत भागवतमाहात्म्ये दृष्टं हेमसिंह समन्वितमिति सर्वशास्त्रमहाराजस्य पुराणसूर्यस्यास्य साम्राज्यार्थं सिंहासनौचित्यात सर्व्वग्रहराजस्यैतदुप-मानस्य सूर्यस्यापि तदानीं सिंहराशिगतत्वेन सिंहासना-धिरुढ़ता दृष्टैव। अस्य सर्वशास्त्र महाराजत्वमेवाह—राजन्ते इति अन्यानि पुराणान्यपि प्रायस्तावत् शास्त्र-राजानि यावन्नेति श्रीभागवतन्तु सम्राड़ेवातः शास्त्रमहाराजमिति भावः। यद्वा अस्य पुराणसूर्यत्व माह राजन्ते दिप्यन्ते रात्रौ नक्षत्राणिवेति भावः। यावद्राज्यन्ते यावन्नेति सति सूर्य्यो न दृश्यते।'

जैसे श्रीकृष्णनाम कृष्णावतारके समान शक्तिशाली हैं, वैसे ही कृष्णसे अभिन्न श्रीमद्भागवत भी कृष्ण-की तरह ही अचिंत्य प्रभावसे युक्त हैं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अप्रकट होनेपर कलिकालमें श्रीमद्-भागवत रूप पुराण-सूर्यका उदय हुआ है—

कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह।
कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः॥
(श्रीमद्भा० १।३।४३)

चक्रवर्त्ती टीका—एषः पुराणार्क इति कृष्णसूर्येऽस्त मिते सति पुराणसूर्योऽयमुदित इति सूर्यस्य प्रतिमूर्त्तिः सूर्य एव भवेत् इति भावः।

अर्थात् धर्मसंस्थापक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जब धर्म और तत्त्वज्ञान आदिके साथ अपने परमधामको पधार गये तब कलिकालमें इस समय भगवत्धर्मके ज्ञानसे हीन और विवेक शून्य जीवोंको दिव्य ज्ञान-रूपी आलोक प्रदान करनेके लिये—अज्ञानान्धकारसे उनका उद्धार करनेके लिए भगवान्के मूर्त्तिमान् विग्रह श्रीमद्भागवत-रूप पुराण-सूर्यका उदय हुआ है।

पद्मपुराणमें भी हम इस बातकी पुष्टि पाते हैं—श्रीकृष्णके अपने परमधामको जानेकी बात जानकर परमभक्त श्रीउद्धवजी बड़े दुःखी हुए और उन्होंने श्रीकृष्णके चरणोंमें निवेदन किया कि उनके (कृष्णके) अप्रकट होनेके बाद घोर कालिमें धर्मकी रक्षा कैसे हो सकेगी। इसके उत्तरमें श्रीकृष्णने उद्धवको बतलाया कि जीवोंके कल्याणके लिये वे अप्रगट होने पर भी स्वयं श्रीमद्भागवतके रूपमें प्रकट रहेंगे। साधु-पुरुष उसी श्रीमद्भागवतका आश्रय कर सहज ही कालिके घोर पापोंसे बचे रहेंगे। यथा—

उद्धव उवाच—

त्वं तु यास्यामि गोविन्द भक्तकार्यं विधाय च।
मच्चित्ते महती चिन्ता तां श्रुत्वा सुखमावह॥
आगतोऽयं कलिर्घोरो भविस्यन्ति पुनः खलाः।
तत्संगेनैव सन्तोऽपि गमिष्यन्त्युग्रतां यदा॥
तदाभारवती भूमिर्गोरूपेयं कमाश्रयेत्।
अन्यो न दृश्यते त्राता त्वत्तः कमललोचन॥
तद्वियोगेन ते भक्ताः कथं स्थास्यन्ति भूतले।
निर्गुणोपासने कष्टमतः किंविद् विचारय॥
इत्युद्धववचः श्रुत्वा प्रभासेऽचिन्तयद्धरिः।
भक्तावलम्बनार्थाय किं विधेयं मयेति च॥
स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात्।
तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम्॥
तेनेयं वाङ्मयी मूर्त्तिः प्रत्यक्षा वर्त्तते हरेः।
सेवनात् श्रवणात् पाठाद् दर्शनात् पाशनाशिनी॥

❀ ❀ ❀

दारिद्र्य दुःखज्वरदाहितानां,
मायापिशाची परिमर्दितानाम् ।
संसारसिन्धौ पारिपतितानां,
क्षेमाय वै भागवतं प्रगर्जति ॥ (पद्मपुराण)

गौर और कृष्णके नित्यसिद्ध पार्षद श्रील सनातन गोस्वमी प्रभुने लीलास्तव नामक ग्रन्थमें श्रीकृष्णके शाब्दिक अवतार श्रीमद्भागवतका यह स्तव लिखा है—

सर्वशास्त्राब्धिपीयुस सर्ववेदैक सत्फल ।
सर्व सिद्धान्तरत्नाढ्य सर्वलोकैकदृक्प्रद ॥
सर्व भागवत-प्राण श्रीमद्भागवत प्रभो ।
कलिध्वान्तोदितादित्य श्रीकृष्णपरिवर्त्तित ॥
परमानन्द पाठाय प्रेमवर्ष्यक्षराय ते ॥
सर्वदा सर्वसेव्याय श्रीकृष्णाय नमोऽस्तु मे ॥
मदेकबन्धो मत्संगिन मद्गुरो मन्महाधन ।
मच्चिस्तारक मद्भाग्य मदानन्द नमोऽस्तुते ॥
असाधु - साधुतादायिन्नतिनीचोच्चताकर ।
हा न मुञ्च कदाचिन्मा प्रेम्ना हृत्कंठयोःस्फूर ॥

हे सर्वशास्त्ररूपी समुद्रसे निकलने वाले श्रीमद्-भागवत ! तुम समस्त वेदोंके मुख्य और अत्यन्त उत्तम फल हो । तुम समस्त सिद्धांतोंके आकर, दिव्य-ज्ञान प्रदान करने वाले और भक्तोंके प्राण-प्रिय हो । हे प्रभो, कलियुग रूप अन्धकारका विनाश करने के लिए तुम सूर्यके समाम प्रकाशित हो । तुम कृष्णके प्रतिनिधि हो । तुम्हारा पाठ करनेसे परमानन्द लाभ होता है । तुम्हारे प्रत्येक अक्षर प्रेम-सुधाकी वर्षा करते हैं । तुम सर्वदा सब लोगोंके सेव्य हो । हे श्रीमद्भागत रूपी श्रीकृष्ण ! तुम्हारे श्रीचरणकमलोंमें बारम्बार नमस्कार है । तुम्हीं हमारे एकमात्र बन्धु हो, गुरु हो, महाधन हो, उद्धारक हो, हमारे भाग्य हो और आनन्द हो । तुम्हें नमस्कार है । तुम असाधु व्यक्तियोंको साधुता प्रदान करते हो । अत्यंत नीच व्यक्तियोंको भी श्रेष्ठ और उन्नत बना देते हो । हे प्रभो ! मुझे कभी त्याग न करना । कृपाकर मेरे हृदयमें प्रेमसे पूर्ण होकर स्फूरण होओ ।

श्रील जीव गोस्वामीने भी क्रम सन्दर्भकी टीकाके मङ्गलाचरणमें श्रीमद्भागवतको इस प्रकार प्रणाम किया है—

श्रीमद्भागवतं नौमि यस्यकस्य प्रसादतः ।
अज्ञातानपि जानाति सर्वः सर्वागमानपि ॥

जिस केवल एक ग्रन्थकी कृपासे ही कोई भी व्यक्ति समस्त वेदशास्त्रोंका तात्पर्य जाननेमें समर्थ हो सकता है, मैं उसी श्रीमद्भागवतको प्रणाम कर रहा हूँ ।

श्रीजीवगोस्वामीने (श्रीमद्भागवत् १।१।२ श्लोककी टीकामें) और भी कहा है—श्रीमद्भागवत श्रीमान् अर्थात् श्रीभगवान्के नामादिकी तरह स्वाभाविक शक्तिशाली हैं । भगवान्का प्रतिपादक ग्रन्थ होनेके कारण इनका नाम 'भागवत' पड़ा है । कहीं-कहीं 'श्रीमद्भागवत' के बदले 'भागवत' नामका जो उल्लेख देखा जाता है, वह सत्यभामाके 'भामा' नाम-की तरह है । इसके रचयिता सर्वश्रेष्ठ हैं । इसलिये इनका इतना प्रभाव है । भगवान् ही इसके प्रणेता हैं । भगवत् साक्षात्कार—पुरुषार्थ शिरोमणि है, जो इस ग्रन्थके द्वारा ही सुलभ है । 'भगवत्' नामके सम्बन्ध-में श्रीचक्रवर्त्ती ठाकुर श्रीमद्भागवत २।१।८ श्लोककी टीकामें कहते हैं—'भागवतम भगवन्तमधिकृत्य कृतं, भगवता प्रोक्तं वा, भगवत इदं इति वा ।'

श्रीमद्भागवत समस्त उपनिषदोंके सारस्वरूप, अनादि सिद्ध और परब्रह्मके समान हैं । वे सम्पूर्ण अप्राकृत निधियोंसे परिपूर्ण हैं । ग्रन्थ-सम्राट श्रीमद्-भागवत स्वयं अक्षर और अर्थ—दोनों रूपोंमें सब तरहसे सुन्दर और महापुराणोंमें श्रेष्ठ हैं । ये रस स्वरूप हैं । 'निगमकल्पतरोर्गलितं फलं' आदि वचनों तथा महापुरुषोंके साक्षात् अनुभवके अनुसार श्रीमद्-भागवतमें कोई भी अंश हेय नहीं है ।

श्रीहरिने पहले-पहल प्रणवको प्रकाशित किया और पीछे प्रणवका अर्थ प्रकाश करनेके लिए गायत्रीको प्रकट किया । वेदमाता गायत्रीसे चारोंवेदोंका तथा समस्त उपनिषदोंका आविर्भाव हुआ । श्रीव्यासदेवने चारोंवेदों और उपनिषदोंकी समीक्षा कर उन सबका

निचोड़ सूत्रोंके आकारमें ग्रन्थन किया। इसीका नाम ब्रह्मसूत्र या वेदान्तसूत्र है। भगवान् श्रीव्यासदेवने पुराणोंको प्रकाशित किया, तथा ब्रह्मसूत्रकी रचना भी की, फिर भी उनके चित्तको शान्ति न मिली। तब उन्होंने समाधि लगाई। उसी समाधिमें उनको अपने रचित वेदान्त-सूत्रके भाष्यरूपमें श्रीमद्भागवत की प्राप्ति हुई। इसमें समस्त शास्त्रोंका अपूर्व समन्वय देखा जाता है। इसका कारण यह है कि श्रीमद्-भागवतका मूलाधार वही गायत्री है, जिसमें समस्त वेदोंका तात्पर्य निहित है। वेद और उपनिषदोंके जो ऋक् या मन्त्र सूत्रोंमें कहे गये हैं, वे ही ऋक् या मन्त्र श्रीमद्भागवतमें श्लोकोंके रूपमें प्रकाशित हुए हैं। श्रीमद्भागवतमें कहीं-कहीं तो वेदों तथा उपनिषदोंके मन्त्र ज्यों-के-त्यों उद्धृत किए गए हैं। श्रीजीवगोस्वामी तत्त्वसंदर्भमें लिखते हैं—

'गारुडे च-पूर्णः सोऽयमतिशयः।
अर्थोऽयं ब्रह्म सूत्राणां भारतार्थ विनिर्णयः॥
गायत्री-भाष्य रूपोऽसौ वेदार्थ-परिबृंहितः।
पुराणानां सामरूपः साक्षाद्भगवतोदितः॥
द्वादशस्कन्धयुक्तोऽयं शतविच्छेद - संयुतः।
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्र श्रीमद्भागवताभिधाः॥

इति ब्रह्मसूत्राणामर्थस्तेषामकृत्रिम भाष्यभूत इत्यर्थः। पूर्वं सूक्ष्मत्वेन मनस्यावभूतम। तदेव संक्षिप्य सूत्रत्वेन पुनः प्रकटितम, पश्चाद्विस्तीर्णत्वेन साक्षात् श्रीमद्भागवतमिति। तस्मात्तद्भाष्यभूते स्वतः-सिद्धि तस्मिन् सत्यर्वाचीन-मन्येषां स्वकपोलकल्पितं तदनुगतमेव आदरणीयमिति गम्यते।'

गरुड़-पुराण भी इसके साक्षी हैं— 'श्रीमद्-भागवत परिपूर्ण वस्तु है। इसमें ब्रह्मसूत्रका अर्थ और महाभारतका तात्पर्य प्रधान रूपसे निर्णय किया गया है। यह गायत्रीका भाष्य है। इसमें वेदोंका निगूढ़ तात्पर्य सन्निवेशित है। वेदोंमें जैसे सामवेद श्रेष्ठ है, वैसेही पुराणोंमें श्रीमद्भागवत प्रधान है। इसके वक्ता साक्षात् भगवान् हैं। इस ग्रन्थमें १८ स्कंध, ३२५ अध्याय और १८,००० श्लोक हैं। यह ब्रह्मसूत्रका अकृत्रिम भाष्य है। श्रीमद्भागवत सबसे पहले समाधिस्थ व्यासदेवके विशुद्ध चित्तमें सूक्ष्म रूपमें उदित हुआ। उन्होंने उसे संक्षेपमें सूत्रोंके रूपमें प्रकाशित किया। पीछे उसीसे विस्तृत रूपमें साक्षात् श्रीमद्भागतका आविर्भाव हुआ। इसलिए श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्रका स्वतःसिद्ध भाष्य है। इसके बाद दूसरे-दूसरे भाष्यकारोंने भी वेदान्त सूत्रके स्वकपोलकल्पित अनेक भाष्योंकी रचना की है। किन्तु ये भाष्य-समूह श्रीमद्भागवतकी भावधाराके अनुकूल होनेपर ही आदरणीय हैं-अन्यथा नहीं।

अद्वय-वस्तु स्वयं भगवान् श्रीकृष्णही जीवोंके सम्बन्ध हैं, कृष्णप्राप्तिके अद्वितीय उपाय-स्वरूप भग-वद्भक्ति ही अभिधेय है और पंचम-पुरुषार्थरूप भगवत्प्रेमही जीवोंके लिए एकमात्र प्रयोजन है। संबंध, अभिधेय और प्रयोजनकी बात श्रीमद्भागवत्में स्पष्टरूपसे विद्यमान है। इसके सम्बन्धमें कतिपय श्लोकोंको उद्धृत किया जा रहा है—

सम्बन्ध—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥
(श्रीमद्भा० १।१।११)

एतेचांशकला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
(श्रीमद्भा० १।३।२८)

अभिधेय—

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या-
दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं—
भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा॥
(श्रीमद्भा० ११।२।३७)

एतावनेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्म्मः परः स्मृतः।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः॥
(भा०६।३।२२)

प्रयोजन—

एवंव्रतः स्वप्रियनाम कीर्त्या, जातानुरागोद्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथ रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥
(श्रीमद्भा० ११।२।४०)

सर्व वेदान्तसारं यद् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम्।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठ कैवल्यैक प्रयोजनम्॥
(श्रीमद्भा० १२।१३।१८)

जो अद्वितीय तत्त्व समस्त वेद-वेदान्तका सार है, जो अद्वितीय होकर भी ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् इन तीन प्रकारसे प्रकाशित है । वही अद्वय-तत्त्व श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य विषय है । श्रीमद्भागवत प्राकृत द्वैत या प्राकृत भेदवादके प्रतिपादक ग्रन्थ नहीं हैं । द्वितीय अर्थात् मायासे ही भय उत्पन्न होता है । अद्वितीय परतत्त्व ही भयको दूर करने वाला अर्थात् संसारको नष्ट करने वाला होता है ।

निर्विशेष-वादियोंका अद्वैतवाद श्रीमद्भागवत-का प्रतिपाद्य विषय नहीं है । श्रीमद्भागवतके आदि, मध्य और अन्तमें बारम्बार इसे स्पष्ट रूपसे दिखलाया गया है । श्रीमद्भागवतके टीकाकार श्रीधर स्वामीने भी केवलाद्वैत-वादी सम्प्रदायके मतकी शुद्धिके लिये इस तथ्यको सुन्दर रूपसे प्रदर्शित किया है । भगवान्के नाम, रूप, गुण और लीलाकी नित्यता; अतर्क्य सहस्र शक्तियोंसे युक्त परतत्त्वके स्वरूप शक्तिकी विचित्रताकी स्वाभाविकता और नित्यता; श्रीकृष्णका स्वयं रूपत्व अथवा परात्परत्व; मुक्त पुरुषोंके भजन का नित्यत्व अर्थात् मुक्तिके बादभी भक्ति और भक्तका नित्यत्व; श्रीनाम और नामीका अभिन्नत्व; मुक्तिकी अपेक्षा विमुक्ति अर्थात् भगवत्-प्रेमका उत्कर्ष—आदि सिद्धान्तोंको केवलाद्वैतवाद स्वीकार नहीं करता । किन्तु वेदान्तके अकृत्रिम भाष्य श्रीमद्भागवतमें ये सब सिद्धान्त सुस्पष्ट रूपमें सूर्यके समान प्रकाशित हैं ।

श्रीमद्भागवत उस अद्वितीय वस्तु या सम्बन्धी तत्त्वके प्रतिपादक हैं, जो ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—इन तीन प्रतितियोंमें आविर्भूत है; उस भक्ति-योग या अद्वितीय अभिधेयके प्रतिपादक हैं, जो अद्वितीय वस्तुमें प्रीति उत्पन्न कराता है और प्रतिपादक हैं उस प्रेम या अद्वितीय प्रयोजनके—जो परतत्त्व और उसकी शक्ति—दोनोंको परस्पर प्रीतिरूप सुख-सागरमें निमज्जित कर देता है ।

आनन्द-स्वरूप और परम मधुर भगवान्का नाम उपास्य और उपासना—साध्य और साधन दोनों है । समस्त साधनोंमें श्रीभगन्नामकीर्त्तन ही सर्वश्रेष्ठ साधन है । साधनोंके शिरोमणि इस हरिनामका महात्म्य श्रीमद्भागवतके आदि, मध्य और अन्त—प्रत्येक स्कन्धोंमें सर्वत्र ही अत्यन्त स्पष्टरूपसे वर्णन किया गया है । इसीलिए श्रीलसनातन गोस्वामी श्रीहरिभक्तिविलास १०।२८५ श्लोककी टीकामें कहते हैं—(श्रीमद्भागवत) नाम पुराणं नाम प्रधानं पुराणमिदमित्यर्थः । सर्वत्रैव विशेषतो भगवन्नाम-माहात्म्य-प्रतिपादनात् ।

श्रीमद्भागवतके प्रत्येक स्कन्धसे नाम माहात्म्य-सूचक कतिपय श्लोकोंको उद्धृत किया जा रहा है—

प्रथम स्कन्ध—

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् ।
ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम् ॥
(श्रीमद्भा० १।१।१४)

द्वितीय स्कन्ध—

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतो भयम् ।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्त्तनम् ॥
(श्रीमद्भा० २।१।११)

तृतीय स्कन्ध—

यस्यावतार गुणकर्मविडम्बनानि
नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ।
तेऽनेकजन्मशमलं सहसैव हित्वा
संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥
(श्रीमद्भा० ३।९।१५)

चतुर्थ स्कन्ध—

उत्तानपाद भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा
देवः क्षिणोत्ववनतार्त्तिहरो विपक्षान् ।
यन्नामधेयमभिधाय निशम्य वाद्धा
लोकोऽञ्जसा तरति दुस्तरमङ्गमृत्युम् ॥
(श्रीमद्भा० ४।१०।३०)

पञ्चम स्कन्ध—

यन्नाम श्रुतमनुकीर्त्तयेदकस्मा—
दार्त्तो वा यदि पतितः प्रलंभनाद्वा ।
हन्त्यांहः सपदि नृणामशेषमन्यां
कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥
(श्रीमद्भा० ५।२५।११)

षष्ठ स्कन्ध—

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम् ।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किमुत श्रद्धया गृणन् ॥
(श्रीमद्भा० ६।२।४९)

स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग् ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ॥
सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥
(श्रीमद्भा० ६।२।९-१०)

सप्तम स्कन्ध—

श्रद्धया तत्कथायाञ्च कीर्त्तनैर्गुणकर्मणाम् ।
तत्पादाम्बुरुहध्यानात् तल्लिङ्गेर्हणादिभिः ॥
(श्रीमद्भा० ७।७।३१)

अष्टम स्कन्ध—

मंत्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ।
सर्वं करोति निश्छिद्रमनुसंकीर्त्तनं तव ॥
(श्रीमद्भा० ८।२३।१६)

नवम स्कन्ध—

यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः ।
तस्य तीर्थपदः किंवा दासानामवशिष्यते ॥
(श्रीमद्भा० ९।५।१६)

दशम स्कन्ध—

यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतॄनात्मानमेव च ।
सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥
(श्रीमद्भा १०।३४।१७)

एकादश स्कन्ध—

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणेर्जन्मानि कर्म्माणि च यानि लोके ।
गीतानि नामानि तदर्थकानि, गायन विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥
(श्रीमद्भा० ११।२।३९)

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ।
यत्र संकीर्त्तनेनैव सर्वस्वार्थोऽभिलभ्यते ॥
(श्रीमद्भा० ११।५।३६)

द्वादश स्कन्ध—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥
(श्रीमद्भा० १२।३।५१)

उपसंहार में—

नामसंकीर्त्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम ॥
(श्रीमद्भा० १२।१३।२२)

श्रीमद्भागवत भगवत् कथाओंका अगाध समुद्र है। इसमें भगवानके अवतार-समूहका और प्रधानतः निखिल अवतारोंके अवतारी स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण और लीलाकी कथाओंका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है । इसमें पदे-पदे श्रीहरि कीर्त्तित हुए हैं। श्रीमद्भागवतका कहना है—

'कलिमलसंहति कालनोऽखिलेशो,
हरिरितरत्र न गीयते ह्यभीक्ष्णम् ।
इह तु पुनर्भगवानशेषमूर्ति
परिपठितोऽनुपदं कथाप्रसङ्गैः ॥ श्री०भा०१२।१२।६६

कलिके पाप-राशिको ध्वंश करने वाले श्रीहरिका गुणगान अन्यान्य शास्त्रोंमें कम हुआ है अर्थात् निरन्तर और सर्वत्र नहीं हुआ है। परन्तु श्रीमद्भागवतमें प्रसंगवसतः पद पद पर अनंत-विग्रह श्रीहरि की कथाओंका वर्णन किया गया है।

'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः (कठोपनिषद् २।२३), 'भक्तिरस्य भजनम् (गोपलतापनी) इत्यादि वचनोंसे वेदोंमें तथा'पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया' (गीता ८।२२) सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः, मन्मना भव मद्भक्तः (गीता १८।६४-६५) आदि श्लोकों द्वारा गीतोपनिषद्में भगवत्प्राप्तिके लिए जिस अद्वितीय उपाय स्वरूप निर्मल भक्तिका निर्देश सूत्रके रूपमें है उसी अहैतुकी और निष्काम भक्तिका निरुपण श्रीमद्भागवतमें प्राञ्जल और स्पष्ट भाषामें विस्तारके साथ किया गया है। भक्तिका स्वरूप लक्षण, तटस्थ लक्षण और उसकी प्राप्तिका उपाय एकमात्र श्रीमद्भागवतमें ही निश्चित रूपमें व्यक्त हैं । श्रीमद्भागवतमें 'नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाव वर्जितं' (भा० १।६।१२), 'ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव' (भा० १०।१४।३),' श्रेयः सृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो' (१०।१४।४), 'येऽन्येरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनः' (भा० १०।२।२६), आदि अनेक श्लोकोंसे यह स्पष्ट सिद्धान्त किया गया है कि भक्तिहीन कर्म, ज्ञान आदि साधन नितान्त उपेक्षणीय हैं। कर्म और ज्ञान भक्तिकी सहायतासे ही फल उत्पन्न करनेमें समर्थ होते हैं। अन्यथा वे निरर्थक हैं। किन्तु भक्ति पूर्ण निरपेक्ष है। वह अन्य साधनोंकी सहायता

के बिना ही सब तरहके फलोंको देनेमें समर्थ हैं। "न साधयति मां योगो न सांख्यं, नालंद्विजत्वं" आदि श्लोकोंसे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि, आनन्दमय भगवान्‌के चरणकमलोंको प्राप्त करनेके लिए एक ही और बस एकही उपाय है—भक्ति।

कलियुगको पवित्र करनेवाले, जीवोंके दुःखसे दुःखी श्रीमद्भागवत वज्र-गम्भीर स्वरसे निरन्तर यह घोषणा कर रहे हैं—

हे अमृतके संतान जीवों! तुम लोग सुखकी खोज करते करते मुक्ति-सुखको ही श्रेष्ठ प्रयोजन मान रहे हो, किन्तु वह मुक्ति भगवत्प्राप्तिरूप विमुक्तिके सामने अत्यन्त नगण्य वस्तु है। छान्दोग्य श्रुति 'नाल्पे सुखमस्ति, भूमावै सुखं यत्र नान्यत् पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा' आदि मंत्रोंमें जिसे निर्देश करती है, उसे लाभ कर सब प्रकारकी आकांक्षाएँ परिपूर्ण हो जाती हैं। और किसी प्रकारकी आकांक्षा अपूर्ण नहीं रहती, वही अनन्त असीम नित्य नए नए रूपमें अनुभव की जानेवाली विमुक्ति अथवा भगवत्प्रेमानन्द ही जीवोंके लिए सर्वश्रेष्ठ प्रयोजन है। यही सर्वश्रेष्ठ सुख है। मुक्त पुरुष भी भक्तोंके संगके प्रभावसे भक्ति-सुखको पानेके लोभसे भगवान्‌का भजन किया करते हैं, जैसे—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः॥

शुकदेव गोस्वामी और सनत्कुमार आदि चारों कुमार इसके ज्वलंत दृष्टान्त हैं। हे जीवों! तुमलोग उसी सुखके नित्य अधिकारी हो और उस सुखको प्राप्त करनेके लिये अत्यन्त सहज और निश्चित मार्ग है—भक्तोंकी कृपासे प्राप्त की हुई भगवान्‌की भक्ति। तुमलोग उसी भक्तिको पाने की चेष्टा करो।

'भक्तिस्तु भगवद्भक्तसंगेन परिजायते' अर्थात् भक्ति भगवद्भक्तोंका सङ्ग करनेसे पाई जाती है। सत्सङ्ग ही भक्तिका मूल है। साधु-सङ्गके अतिरिक्त भक्तिलाभ करनेका कोई दूसरा तरीका नहीं है—यह श्रीमद्भागवतका स्पष्ट विचार है। सत्सङ्गमें कितनी आश्चर्यजनक शक्ति निहित है, उसकी कितनी विचित्र महिमा है, उसमें भगवान्‌को वशमें करनेकी कैसी अद्भुत क्षमता है—श्रीमद्भागवतने स्वयं वर्णन किया है। श्रीमद्भागवतके 'नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं' (भा० ७।५।३२), 'सतां प्रसङ्गान्ममवीर्यसंविदः' (भा० ३।२५।२५), 'ज्ञाने प्रयासमुदपास्य' (भा० १०।१४।३), 'तुलयाम लवेनापि' (भा०१।१८।१३), 'न रोधयति मां योगः' (भा० ११।१२।१-२) आदि श्लोकों द्वारा भक्तिलाभ करनेके लिये साधुसङ्गकी अपूर्व महिमाका वर्णन किया गया है।

जीवोंके सर्वश्रेष्ठ प्रयोजन तथा उसकी प्राप्तिके लिए अत्यन्त सहज पथको बतलाने वाले, केवल बतलाने वाले ही नहीं उसे प्रदान करने वाले ग्रन्थ-चक्रवर्ती श्रीमद्भागवत ही हमारे एक मात्र आश्रय हों। श्रीमद्भागवतके अत्यन्त रहस्य-पूर्ण शास्त्र होनेके कारण ही व्यासदेवजीने अपने अन्य शिष्योंको तो दूसरे-दूसरे पुराणोंका अध्ययन कराया, परन्तु अपने प्रिय और योग्य पुत्र शुकदेवको ही श्रीमद्भागवत पढ़ाया था। श्रीजीवगोस्वामीने कृष्ण-सन्दर्भमें लिखा है—

'श्रीभागवतस्य सर्वशास्त्रचक्रवर्त्तित्वं प्रथमसन्दर्भे प्रघट्टकेनैव दर्शितम्। पूर्णज्ञान-प्रादुर्भावानन्तरमेव श्रीवेदव्यासेन तत्प्रकाशितमिति च तत्रैव प्रसिद्धम्। * *। नवमेऽप्युक्तम्—हित्वा स्वशिष्यान् पैलादीन् भगवान् बादरायणः॥ मह्यं पुत्राय शान्ताय परं गुह्यमिदं जगौ। (भा० ९।२२।२२-२३) इति। तदेवं सर्वशास्त्रोपरिचरत्वं सिद्धम्।'

पूर्णज्ञानके आविर्भाव होनेपर ही व्यासदेवने श्रीमद्भागवतको प्रकाशित किया। यह बात श्रीमद्भागवतमें ही लिखी गई है। श्रीमद्भागवतका सिद्धांत अत्यंत निगूढ़ है तथा उसीमें श्रीव्यासदेवका मुख्य अभिप्राय व्यक्त हुआ है। नवें स्कंधमें श्रीशुकदेवजी कहते हैं—यह पुराण परम गोपनीय और अत्यन्त रहस्यमय है। इसीसे मेरे पिता भगवान् व्यासदेवने अपने पैल आदि शिष्योंको इसका अध्ययन नहीं कराया, मुझे ही शान्त आदि गुणोंसे युक्त और योग्य समझकर इसका अध्ययन कराया था। श्रीजीव गोस्वामी उक्त ग्रन्थमें और भी कहते हैं—

'श्रीमद्गीता-गोपालतापन्यादि-शास्त्रगण-सहायस्य निखिलेतर शास्त्रशतप्रणतचरणस्य श्रीभागवतस्याभिप्रायेण श्रीकृष्णस्य स्वयंभगवत्त्वं करतल इव दर्शितम्। श्रीभागवतस्य च स एव प्रतिपाद्यम् इति पुराणान्तरेणैव च स्वयं व्याख्यातम्। यथा ब्रह्माण्डपुराणे श्रीकृष्णाष्टोत्तरशत-नामामृतस्तोत्रे श्रीकृष्णस्य नाम-विशेष एव शुकवागमृताब्धीन्दुरिति ।'

श्रीमद्भगवद्गीता और गोपालतापनी आदि शास्त्र जिसके सहायक हैं और दूसरे-दूसरे समस्त शास्त्र जिसके चरणोंमें सेवककी तरह नतमस्तक हैं उसी शास्त्रका नाम है श्रीमद्भागवत। श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्ण की स्वयं-भगवत्ता करतलगत मणिकी तरह प्रत्यक्ष है। श्रीकृष्ण ही भागवतके प्रतिपाद्य विषय हैं—इसका दूसरे पुराणोंमें भी निर्देश दिया गया है। जैसे ब्रह्माण्ड पुराणमें श्रीकृष्णके अष्टोत्तर नामामृत स्तोत्र में 'शुकवागमृताब्धीन्दु' कहकर श्रीकृष्णके एक नाम-विशेषका उल्लेख किया गया है। शुकके वचनरूप अमृतके सागर हैं—श्रीमद्भागवत, उसी सागरके चन्द्र अर्थात् प्रतिपाद्य हैं—भगवान् श्रीकृष्ण। जो लोग 'रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति', इस आगम वाणीको अपने जीवनमें प्रत्यक्ष करना चाहते हैं, उन्हें महाजनोंके आनुगत्यमें अखिल-रसामृतमूर्त्ति श्रीकृष्णके भुवनमङ्गलावतार श्रीमद्भागवतका श्रवण, पठन और मनन करना आवश्यक है। उनके सेवनसे ही मनुष्य वेदके सुपरिपक्व और अत्यन्त उत्तम रसमय फल श्रीमद्भागवतका रसास्वादन कर परमानन्दको प्राप्तकर सकते हैं।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिमयूख भागवत महाराज

जैव-धर्म

[पूर्व प्रकाशित वर्ष १, संख्या १२, पृष्ठ२८२ से आगे]

लाहिड़ी महाशयने प्रसन्न होकर कहा—'देवी! तुमने बहुत कुछ पढ़ा-लिखा। किन्तु जीवका यथार्थ कल्याण कैसे होता है—अब उसे भी ढूढ़नेका प्रयत्न करो।'

देवीदास—'पिताजी! मैं एक बड़ी आशा लेकर यहाँसे आपको अपने साथ लिवा ले जानेके लिए आया हूँ। कृपाकर एक बार आपके घर जानेसे सभी कृतार्थ होंगे। विशेषतः माताजी आपके दर्शनोंके लिए बड़ी इच्छुक हैं।'

लाहिड़ी—'मैंने वैष्णव-चरणोंमें आश्रय ग्रहण कर लिया है, और प्रतिज्ञा की है कि भक्तिके विरोधी घरमें मैं अब कभी प्रवेश न करूँगा। तुम लोग पहले वैष्णव बनो, फिर मुझे घर ले चलना।'

देवीदास—'पिताजी! यह बात आप कैसे कहते हैं? हमारे घरमें प्रतिदिन भगवान्की सेवा-पूजा होती है, हमलोग हरिनामका अनादर नहीं करते; अतिथियों और वैष्णवोंका आदर-सत्कार करते हैं, फिर भी क्या हमलोग वैष्णव नहीं हैं?'

लाहिड़ी—'यद्यपि वैष्णवोंकी क्रिया और तुम लोगों की क्रियामें बहुत कुछ साम्य है—दोनोंकी क्रियाओंमें भेद नहीं है, तथापि तुम लोग वैष्णव नहीं हो।'

देवीदास—'तब क्या करनेसे वैष्णव हो सकेंगे?'

लाहिड़ी—'नैमित्तिक भावोंका परित्यागकर नित्य धर्मका आचरण करनेसे वैष्णव हो सकते हैं।'

देवीदास—'मेरा एक संशय है। आप उसकी अच्छी तरह मीमांसा करनेकी कृपा करें। मेरा संशय यह है कि—वैष्णव लोग जो श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पाद-सेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म-निवेदन—इस नवधा भक्तिके अंगोंका आचरण करते हैं, इनमें यथेष्ट जड़मिश्र कर्म हैं। फिर इनको भी

नैमित्तिक क्यों नहीं कहा जाय ? इस विषयमें मुझे कुछ पक्षपात सा नजर आता है। श्रीमूर्तिकी सेवा, उपवास, जड़ पदार्थों द्वारा पूजा--ये तो सभी स्थूल हैं फिर ये किस प्रकार नित्य हो सकते हैं ?'

लाहिड़ी—'बेटा! इस बातको समझनेमें मुझे भी अनेक दिन लगे थे। तुम इसे अच्छी तरह समझ लो। मनुष्य दो प्रकारके होते हैं-(१) ऐहिक—इस लोकसे सम्बन्ध रखने वाले और (२) पारमार्थिक—परलोकसे सम्बन्ध रखने वाले। ऐहिक मनुष्य लौकिक सुख, लौकिक मान और लौकिक उन्नतिकी खोज करता है। पारमार्थिक मनुष्य तीन प्रकारके होते हैं-(१) ईशानुगत, (२)ज्ञाननिष्ठ और (३) सिद्धिकामी। सिद्धिकामी – कर्मकाण्डके फलोंमें आसक्त रहते हैं। ये लोग अपने कर्मोंद्वारा अलौकिक फल प्राप्त करना चाहते हैं। याग, यज्ञ और योगही उस अलौकिक फलको प्राप्त करनेके लिए उपाय हैं। इनके मतमें ईश्वरको माना तो जाता है किन्तु वह ईश्वर कर्मों के अधीन होता है। वैज्ञानिक इसी श्रेणीके अन्तर्गत होते हैं। ज्ञाननिष्ठ मनुष्य—ज्ञानचर्चा द्वारा अपना ब्रह्मत्व उदय करनेका यत्न करते हैं। ईश्वर कोई रहे या न रहे वे साधनके लिए एक ईश्वरकी कल्पना करते हैं तथा उस काल्पनिक ईश्वरकी भक्ति करते-करते क्रमशः ज्ञानका फल ब्रह्मत्वकी प्राप्तिकी आशा करते हैं। ज्ञानका फल पा चुकने पर उपायकालीन काल्पनिक ईश्वरकी अब आवश्यकता नहीं रहती। उन लोगोंकी ईश्वर-भक्तिभी अन्तमें ज्ञानके रूपमें बदल जाती है। इस मतमें ईश्वर और ईश्वरकी भक्ति, दोनों को अनित्य माना जाता है। ईशानुगत मनुष्य तृतीय श्रेणीके पारमार्थिक मनुष्योंके अन्तर्गत होते हैं। ये ही यथार्थतः परमार्थकी खोज करते हैं। इनके मतसे ईश्वर एक हैं। वे अनादि और अनंत हैं। वे अपनी शक्तिसे जीव और जड़की सृष्टि करते हैं। जीव उनके नित्य दास हैं। मुक्तिके बाद भी ये ईश्वरके दास ही रहते हैं। नित्यकाल ईश्वरके अनुगत रहना ही जीवका नित्य-धर्म है। जीव अपने बलसे कुछ नहीं कर सकता। कर्मके द्वारा जीव कोई नित्य फल नहीं प्राप्तकर सकता है। ईश्वरकी श्रद्धापूर्वक सेवा करनेसे उनकी कृपासे जीवकी सर्वार्थसिद्धि हो जाती है। सिद्धिकामी मनुष्य—कर्मकाण्डी और ज्ञाननिष्ठ मनुष्य -ज्ञानकाण्डी होते हैं। केवल ईशानुगत मनुष्यही ईश्वर के भक्तहोते हैं। ज्ञानकाण्डी और कर्मकाण्डी अपनेको पारमार्थिक मानकर अहंकार करते हैं। वास्तवमें वे लोग पारमार्थिक नहीं, ऐहिक हैं, अतः नैमित्तिक हैं। उन लोगोंकी सारी धर्म-चर्चाएँ नैमित्तिक होती हैं।

'शैव, शाक्त, गानपत्य और सौर--ये लोग ज्ञानकाण्डके अधीन हैं। ये लोग जो श्रवण और कीर्त्तन-आदि भक्तिके अंगोंका आचरण करते हैं, वह केवल मुक्ति और अन्तमें अभेद ब्रह्मकी प्राप्तिकी आशासे किया करते हैं। जिन्हें श्रवण और कीर्त्तन आदिसे भुक्ति-मुक्तिकी आशा नहीं होती, वे उपर्युक्त मूर्तियोंमें विष्णुकी सेवा किया करते हैं। भगवान्‌की श्रीमूर्त्ति चिन्मय और सर्वशक्तिसम्पन्न होती है। उपास्य तत्त्वको यदि भगवान् न माना जाय, तो वह उपासना एक अनित्य वस्तुकी उपासना हो जाती है। बेटा! तुम लोगोंकी भगवत्सेवा पारमार्थिक नहीं है। क्योंकि तुम लोग भगवान्‌की नित्यमूर्त्ति स्वीकार नहीं करते। अतएव तुमलोग ईशानुगत नहीं हो। आशा करता हूँ, अब तुम नित्य और नैमित्तिक—इन दोनों उपासनाओंका भेद समझ गए होगे ?'

देवीदास—'हाँ, यदि भगवत्‌विग्रहको नित्य न माना जाय और श्रीविग्रहका अर्चन किया जाय तो उससे नित्य-वस्तुकी आराधना नहीं हो सकती। क्या अनित्य वस्तुकी उपासना द्वारा नित्य तत्त्वकी उपासना नहीं होती ?'

लाहिड़ी—'होनेपर भी तुम्हारी उपासनाको नित्य-धर्म नहीं कहा जा सकता। वैष्णव-धर्मके नित्य विग्रहके अर्चन आदि ही नित्य धर्म हैं।'

देवीदास—'जिस श्रीमूर्त्तिकी पूजा की जाती है, वह तो मनुष्य द्वारा बनाई हुई होती है, उसे नित्य मूर्त्ति कैसे कहें ?'

लाहिड़ी—'वैष्णवों द्वारा पूजी जाने वाली मूर्त्ति वैसी मूर्त्ति नहीं होती । भगवान्, ब्रह्मकी तरह निराकार नहीं हैं । वे सच्चिदानन्द-घन-विग्रह और सर्वशक्तिमान हैं। वही श्रीमूर्त्ति पूजनीय है । वह श्रीमूर्त्ति पहले जीवके चिद् विभागमें प्रतिभात होकर मनमें उदित होती है । मनके द्वारा निर्मित मूर्त्तिमें भक्तियोगसे वह सच्चिदानन्द मूर्त्ति आविर्भूत हो पड़ती है । भक्त उसे दर्शनकर हृदयमें जिस चिन्मय मूर्त्तिको देखते हैं उसके साथ श्रीमूर्त्तिकी एकता कर लेते हैं। किन्तु ज्ञानी लोग जिस मूर्त्तिकी पूजा करते हैं वह मूर्त्ति वैसी नहीं होती । इनलोगोंके मतमें किसी भौतिक पदार्थमें ब्रह्मकी कल्पना की जाती है । ये मूर्त्तियाँ उनलोगोंके साधनावस्थाके लिये ही उपयोगी होती हैं । बादमें वे केवलमात्र एक पार्थिव वस्तुके अतिरिक्त और कुछ नहीं रहतीं । अब तुम इन दोनों मतोंकी मूर्त्तियों तथा उनके अर्चन आदिके भेद पर विचार करो । गुरुदेव-की कृपासे जब वैष्णवी दीक्षा प्राप्त होती है, तब दोनोंके फलोंको देखनेसे यह पार्थक्य भलिभाँति समझ-में आ जाता है ।'

देवीदास—'अब मैं देखता हूँ कि वैष्णवोंमें केवल अन्धविश्वास ही नहीं है बल्कि वे अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी भी हैं। श्रीमूर्त्तिकी उपासनामें तथा किसी पार्थिववस्तुमें ईश्वरकी कल्पनाकर उसकी अनित्य पूजामें बहुत अन्तर है । दोनोंकी क्रियाओंमें कोई अन्तर नहीं किन्तु दोनोंकी अपनी-अपनी निष्ठामें बहुत बड़ा अन्तर है। इस विषयपर कुछ दिन विवेचना करूँगा । पिताजी ! आज मेरी एक बहुत बड़ी शंका दूर हुई । अब मैं जोर देकर कह सकता हूँ कि ज्ञानियोंकी उपासना ईश्वरको केवल धोखा देना है । अच्छा, मैं इस विषयको आपके श्रीचरणोंमें पुनः निवेदन करूँगा ।'

ऐसा कहकर देवी विद्यारत्न और शंभु अपने वास-स्थानको चले गये । फिर शामको आये तो सही, परन्तु इन सब बातोंके लिये अवकाश न मिला । उस समय सभी लोग हरिनाम संकीर्त्तनमें मस्त हो रहे थे।

दूसरे दिन शामको परमहंस बाबाजीके मण्डपमें सभी लोग बैठे हैं । देवी विद्यारत्न और शम्भु लाहिड़ी महाशयके निकट बैठे हैं । इसी समय ब्राह्मण पुष्करिणी (एकगाँव) के काजी साहेब उपस्थित हुए । काजी साहेबको देखकर वैष्णव मण्डली उनका सम्मान करनेके लिए उठ खड़ी हुई । काजी साहेब भी अत्यन्त आनन्दके साथ वैष्णवोंकी अभ्यर्थना कर मण्डपमें बैठ गये ।

परमहंस बाबाजीने कहा—'आपलोग धन्य हैं । क्योंकि आपलोग श्रीमन्महाप्रभुके कृपापात्र चाँदकाजी के वंशज हैं; हमलोगोंपर कृपा रखियेगा ।'

काजी साहेबने कहा—'श्रीमहाप्रभुकी दयासे हम वैष्णवोंके भी दयापात्र हो चुके हैं । गौराङ्ग ही हम-लोगोंके प्राण-पति हैं । उन्हें दण्डवत्-प्रणाम किये बिना हमलोग कोई काम नहीं करते ।'

लाहिड़ी महाशय फारसी भाषाके अच्छे विद्वान् हैं । उन्होंने कुरान शरीफके तीसों सेफरोंको पढ़ लिया है । सूफियोंके भी अनेक ग्रन्थोंका अध्ययन किया है। उन्होंने काजी साहेबसे पूछा—'आपलोगोंके मतमें मुक्ति किसे कहते हैं ?' (क्रमशः)